हिमालय में दिगम्बर मुनि



लेखक :

पद्मचन्द्र शास्त्री एम० ए०

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर २५०० निर्वाणोत्सव समिति
श्रीनगर-गढ़वाल [हिमालय]

प्राप्ति स्थान :
जैन बुक एजेन्सी, सी-८ कनॉटप्लेस
नई दिल्ली-१

श्री महावीर निर्वाण संवत् २४९७
मूल्य [illegible] रुपये [illegible]

मुद्रक :
प्रभात प्रेस, मेरठ।

'रयणत्तय च वदे चउवीसजिणे च सव्वदा वदे ।
पंचगुरूणं वन्दे चारणचरण सदा वदे ॥'—

* * *

'गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायालेरुक्खमूलरयणीसु ।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं ॥'—

* * *

'गिरिकन्दरदुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बराः ।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते याति परमा गतिम् ॥'—

* * *

विषय-संकेत

गृह-त्यागानन्तर, मुनिश्री के वर्षायोग-स्थानों की नामावलि

१९४६	कोण्णर [कर्नाटक]
१९४७	हूमच [,,]
१९४८	कुम्भोज [महाराष्ट्र]
१९४९	शेडवाल [मैसूर]
१९५०	,, [,,]
१९५१	,, [,,]
१९५२	,, [,,]
१९५३	,, [,,]
१९५४	,, [,,]
१९५५	,, [,,]
१९५६	,, [,,]
१९५७	हूमच क्षेत्र [कर्नाटक]
१९५८	सुजानगढ [राजस्थान]
१९५९	,, [,,]
१९६०	बेलगाँव [कर्नाटक]
१९६१	कुन्द कुन्दाद्रि [,,]
१९६२	शिमोगा [,,]
१९६३	दिल्ली
१९६४	जयपुर [राजस्थान]
१९६५	फिरोजाबाद [उ० प्र०]
१९६६	दिल्ली
१९६७	मेरठ [उ० प्र०]
१९६८	बडौत [,,]
१९६९	सहारनपुर [,,]
१९७०	श्रीनगर-गढवाल, हिमालय [उ० प्र०]

सर्वसावद्यविरताः परहितनिरता विरागसंयुक्ताः ।
ममतामोहविजयिन कामनिरसना महाव्रतिनः ।।१।।
त्याग-तपस्या-संयमशीला उच्छिन्नपरिग्रहा मुनयः ।
जिन-संस्कृति सम्भरणा पूजितचरणाः परं कृतिनः ।।२।।
दिगम्बराचार्या ये मुनिवराः कराम्बुजन्मनोस्तेषाम् ।
न्यस्यति पिच्छिःकमण्डलुरुपकरणे मुनिर्विद्यानन्दः ।।३।।

आद्य-विनय

'अपारकरुणाशील, साक्षाद्धर्मतनुर्महान्।
अहिंसाधर्मधौरेयो, विद्यानन्दमुनिर्जयेत्॥'

यद्यपि अल्पबुद्धि मेरे द्वारा किया गया मुनि-हिम-गिरि-यात्रा-वृत्त लेखन रूप महान कार्य विद्वानों के हास्य का स्थान है। अन्य अनेक विद्वान् उन पर पर्याप्त प्रकाश डाल सकते है। तथापि मैं मुनिभक्ति वश इस महान कार्य के लिये उद्यमी हुआ हूँ, यह मेरी धृष्टता है। आशा है विद्वान् पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

कुछ मनीषियो ने मुझे परामर्श दिया कि जब लोक मे साहित्य-लेखन का कार्य प्रचुर मात्रा मे बढ गया है तब यह आवश्यक है कि जनता को अध्यात्म-पुट देने वाली सामग्री सचित की जाय। फलतः मुनि श्री की ऐतिहासिक-सुवर्ण यात्रा का सदुपयोग हो, यात्रा जन-जन के ज्ञान-नेत्र उद्घाटित करने मे सहायी हो, लोगो को आत्म-हित की ओर ले जाने वाली हो, इस दृष्टि से मैंने कुछ पुष्प गूंथने का प्रयास किया है। इनमे से सुरभित पुष्प चुनना, उनकी सुगन्धि लेना पाठको पर निर्भर है। हाँ, मुझे आशा अवश्य है कि पाठक इससे अवश्य ही लाभान्वित होगे—'हिमालय मे दिगम्बर मुनि' उनके समक्ष है।

एक बात और। नि:सन्देह, इधर शताब्दियो से हिमगिरि के उत्तुग शिखरो मे दिगम्बर मुनियो का विहार अवरुद्ध रहा। परम पूज्य १०८ मुनि श्री विद्यानन्द जी ने उसे खोलकर आदर्श, अविस्मरणीय और सर्वथा अनुकरणीय कार्य किया है। आदि जैन तीर्थकर श्री वृषभदेव के माता-पिता नाभि-मनु एव मरुदेवी की तप स्थली[1] और हिमालयस्थ महत्त्वपूर्ण केन्द्र श्री बद्री-

१. देखें—भागवत ५/४/५

विशाल मन्दिर मे वैदिक विद्वानो व जनता ने दिगम्बर जैन मुनि के प्रति जो श्रद्धाभक्ति प्रकट की है, उसके लिये जैन समाज सदा कृतज्ञ रहेगी।

यात्रा मे मुझे भी मुनि श्री के साथ रहने का सौभाग्य मिला और अनेक नवीन अनुभव हुए जो लाखो-लाखो व्यय करने पर भी किसी को सर्वथा दुर्लभ है। मै मुनि श्री का कृतज्ञ हूँ, उनकी मुझ पर परम कृपा है।

यात्रा प्रबन्ध मे सावधान श्रावक शिरोमणि, दानवीर साहु श्री शान्तिप्रसाद जैन व उनकी सह-धर्मिणी सौ० श्रीमती रमारानी जैन और यात्रा मे साथ देने वाले सभी साधर्मी मेरी श्रद्धा के केन्द्र हैं, मैं सबका आभार मानता हूँ। भारतीय ज्ञान-पीठ के सुयोग्य मत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन के विषय मे क्या लिखूं ? वे साहित्य-सस्था के माध्यम से जन-जन के कल्याण मे रत है। उन्होने 'प्रारम्भिक-वक्तव्य' देने की कृपा की। यह कृपा असाधारण है और सदा स्मरण रहेगी। विज्ञेषु किमधिकम् ?

दिल्ली

चैत्र वदी ९, ऋषभजयन्ती

विनीत

पद्मचन्द्र शास्त्री,
एम ए.

आद्य मिताक्षर

'हिमालय मे दिगम्बर मुनि', यद्यपि देखने मे लघुकाय पुस्तिका है, किन्तु अपनी गरिमा, प्रभाव की परिपूर्णता और प्रभाव की व्यापकता मे यह उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना हिमालय दर्शन और दिगम्बर मुनि की वन्दना। हिमालय अपने आप मे विश्व का महान् गिरिराज है जिसे कालिदास ने 'देवतात्मा' कहा है—'अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज।' और दिगम्बर मुनि का अस्तित्व, उनकी साक्षात् वन्दना, उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनो का लाभ आज के युग की अनुपम उपलब्धि है। लेकिन जब ये दोनो भव्य व्यक्तित्व—हिमालय और दिगम्बर मुनि—एक दूसरे के आमने-सामने होते है, इनका मौन मधुर साक्षात्कार अनहद नाद की वाणी मे गुंजित होकर अन्तस्तल के तारो को झकारता है, तब क्या होता है? इस परम आनन्द की वास्तविक अनुभूति जिन परम पूज्य दिगम्बर जैन सन्त श्री १०८ मुनि विद्यानन्द जी महाराज को हुई, उसका एक अमृत-कण जन-साधारण को भी प्राप्त हो जाये, इस भावना से प्रेरित होकर मुनि महाराज ने अपनी हिमालय-यात्रा के अनुभवो को बहुत सक्षेप मे लिपिबद्ध करवा देने की कृपा की। प्रकृति के विशाल, मनोमुग्ध-कारी प्रागण मे, सुषमा और सौन्दर्य के जीवन्त परिवेश मे, एक आध्यात्मिक सन्त निर्मल भावनाओ के किन अज्ञात शिखरो का स्पर्श कर लेता है और उसका गद्गद् अन्तरात्मा का पीयूष कैसे छलक-छलक पडता है, इसका किंचित् आभास प्रत्येक पाठक को इस पुस्तक से प्राप्त हो जायेगा।

मानव-इतिहास की आदि गाथा और महापुराण के रम्य चित्रण हमे जिन भगवान ऋषभदेव की कर्मभूमि और धर्म-धरा की ओर आकर्षित कर रहे है उसके छोरो तक पहुचकर तीर्थ-यात्रा का पुण्य-लाभ कुछ विरलो को पहले मिल चुका है, लेकिन इतिहास के दीर्घ

अन्तराल में किसी 'दिगम्बर मुनि' का वहाँ पहुचकर उस भूमि पर धर्मोपदेश के दीपक पुनर्जागृत करने का अवसर शायद शताब्दियो बाद आया है।

इस दृष्टि से मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज की यह यात्रा ऐतिहासिक महत्व की है। श्री साहू शान्तिप्रसाद जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन ने मुनि महाराज की हिमालय यात्रा के कार्यक्रम को जब, व्यवस्था की दृष्टि से, नजीबाबाद मे ३० अप्रैल १९७० को अन्तिम रूप दिया, उस समय मुझे मुनि महाराज के सानिध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय मैंने अनुभव किया जैसे स्वय मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज का सारा ध्यान हिमालय के शिखर पर स्थित उस स्थान पर केन्द्रित था जहाँ बद्री विशाल के मन्दिर मे भगवान ऋषभदेव की मूर्ति स्थापित है और जहाँ आदि शकर ने धर्मपीठ की स्थापना को इतिहास के सत्य से जोडने का प्रयत्न किया है—काल ने उस सत्य को बेशक आज आम्नाय विशेष की झीनी परत से प्रच्छन्न कर दिया है। यही भावना वह मूल प्रेरणा बनी कि मुनि महाराज ने लगभग छ महीने मे प्राय ५०० मील की पैदल यात्रा करके न केवल आदि मूर्ति के दर्शन किये, बल्कि हिमालय प्रान्त के २०–२५ ग्रामो और नगरो मे भगवान आदिनाथ के उपदेशो को साकार किया। हिमालय यात्रा के अनेक वर्णन भारतीय तथा विदेशी साहित्य मे उपलब्ध हैं। भव्य चित्रावलियो से भी अनेक सग्रहालय समृद्ध है। लेखक और चित्रकार ने अपने अनुभव के वर्षा-जल से अपनी दृष्टि और अपनी भावना के अनुरूप अकुर उगाये हैं। यह वर्णन सर्वथा विलक्षण है जहाँ पर पग-पग पर प्रकृति अध्यात्म की भाषा बोलती चलती है। प्रसिद्ध कला-आचार्य नन्दलाल बोस ने एक स्थान पर लिखा है कि जिस हिमालय की प्रतिमूर्ति बडे-बडे पहाडो को इकट्ठा करके, उन्हे स्तूपाकार रूप देकर नही गढी जा सकती, जिस प्रकार कोई सामान्य चित्रकार बडे-बडे चित्रपटो पर मोटी-मोटी रेखाओ और गहरी स्याही से हिमालय का सजीव चित्राकन नही कर सकता, वहाँ एक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार पाँच-सात लघु रेखाओ से हिमालय की आत्म-छवि को दर्शक के मानस-पटल पर प्रतिबिम्बित कर सकता है। इस पुस्तक को पढकर कुछ-कुछ इसी सत्य का आभास मिलता है।

पुस्तक मे न तो यात्रा के मार्ग का भौगोलिक वर्णन है, न प्रकृति के चित्रो का प्रभूत वर्णन है, न शैली को काव्य-वहुल वनाने का प्रयास है, न ऐतिहासिक शोध को वैज्ञानिक विस्तार देने की प्रगल्भता है, किन्तु अपने सक्षेप कलेवर मे इन सभी गुणो की झाकियाँ मिल जाती हैं। सारी यात्रा और यात्रा की आध्यात्मिक अनुभूति एव जन मानस के सस्पर्श की तरगो को मूर्त रूप देने का यह प्रयास वास्तव मे एक वडे ग्रन्थ की रूपरेखा मात्र है। हम आशा करें कि इस पुस्तक के आगे के सस्करण परिवर्द्धित होते चले जायेंगे और पाठको की प्रतिक्रिया एव आकाक्षा के अनुरूप यह पुस्तक ग्रन्थ का रूप लेती चली जायेगी।

यात्रा के जिस केन्द्र विन्दु का उल्लेख मैंने ऊपर किया, उस मूर्ति के विषय मे विशद रूप से जानने की इच्छा वनी रह जाती है। सयमी साधु ने जितना कुछ वहाँ देखा, जाना और आत्मसात् किया उसके वर्णन मे वह शव्दो के प्रति अद्भुत ढग से मित-व्ययी हो गए है। इसका कारण है। सारी यात्रा मे मुनि महाराज का स्वागत-सत्कार, प्रवचन-आयोजन आदि जिन व्यक्तियो ने किया वे एक ओर अपनी आम्नाय और मान्यता में दृढ श्रद्धालु है, और मुनि श्री के प्रति उनकी श्रद्धा नें एक नई दिशा पाई है, दिगम्वरत्व जैन धर्म, भगवान ऋषभदेव, नाभिराय और स्कन्दपुराण, विष्णुपुराण आदि मे वर्णित इन सदर्भों के प्रति नई दृष्टि पाई है। इस श्रद्धा और इस दृष्टि को सम्मान मिले, कोई वात विक्षोभकारी इस सपर्क के वीच में न आने पाये इसे साध कर चलना साधु श्री नें समुचित माना है। हमे विश्वास है इस श्रद्धा के मार्ग पर चलकर इतिहास अपना अर्थ स्वय खोलेगा और तथ्य की स्थापना अनुभूत सत्य के रूप मे हो सकेगी।

भारतीय ज्ञानपीठ
दिल्ली।
२० फरवरी, १६७१

लक्ष्मीचन्द्र जैन

वृषभदेव-स्तुति

श्रमनिरवधारणंताम् मे.
भवन भगवन् ! नाभिनन्दन !
हिम-गिरितपधर ! वृषभजिन !
नन्दकी [illegible] ! [illegible] निरपवार्यताम् मे ॥१॥

[illegible]
सिन्धि[illegible]
[illegible]
नाशित नन्दिन् सौन्दर्येण , कृपा विस्तार्यताम् मे ॥२॥

[illegible] मे
[illegible] विभुता मे
[illegible]—
[illegible] स्वर्यताम् मे ॥३॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] विस्तार्यताम् मे ॥४॥

श्री विद्यानन्द-स्तवन

मुनीश्वर ! तव पदयो: प्रणमामि
नाम नाम विना विरामं मानव जन्म पुनामि

त्व भवाम्बुनिधितितीर्षावता प्लव: कोऽपि विश्वस्य:
गुप्तिसमितिव्रतत्रयोदशीना कृतसम्यग् वरिवस्य:
भवभ्रश पटुपदपांसु ते शुभ शिरसि लिम्पामि

तनुरन्या पृथगात्मा पुसा द्विदलविभक्तं सत्यम्
एक मनुते मिथ्यादृष्टिर्हा ! कीदृग् वैमत्यम्
भेदज्ञानकुठारं लब्ध्वा भवशाल छिन्दामि

सुधामाधुरीमधरी कुरुते 'विद्यानन्द' ! वचस्ते
निरुपप्लव चरसि चर्या त्व पथि शकरे प्रशस्ते
आध्यात्मिकसन्मार्गगुरु त्वा प्रणुतपुरु गणयामि

असिधारेव दुर्गम पन्था 'हिम-गिरि' हिम-आच्छन्नः
त्वया हेलया मोक्षमार्गजिगमिपुणा मुनिवर ! विन्न:
परिमिततरवागजलिना ते यश कियद् गृह्णामि

रत्नत्रितयसमाहित ! भवत पदयोर्मणय कीर्णा.
चतुरशीतिभवविभ्रमनृपतेर्मुकुटावलिर्विशीर्णा
'विशाला' प्रवचनमहिमान कैरक्षरैर्यजामि

श्री वृषभदेवाय नम.

आमुख

[हिमालय मे जैन-सस्कृति]

हिमालय आदि काल से ही जैन-सस्कृति का केन्द्र रहा है। हिन्दू पुराण श्रीमद्भागवत के लेखानुसार आदि मनु 'नाभि' और उनकी रानी 'मरुदेवी' ने इसी हिमालय के एक भाग 'विशाला' मे तप किया और विशाल फल को पाया। सभवत इस भाग का नाम विशाला तभी से पडा हो। मालूम तो ऐसा भी होता है कि पूर्व की 'विशाला' उत्तरकाल मे बद्री-विशाल सज्ञा को पा गई हो यह सभव है। जब पुराणो के अनुसार जम्बूद्वीप के नामकरण मे जम्बूनामा वृक्ष मुख्य कारण है, तब उक्त भाग मे बदरीवृक्षो की बहुतायत भी इसके नामकरण मे मुख्य कारण हो सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं जिनमे स्पष्ट उल्लेख है कि—'हिम नामक वर्ष' नाभि का था और नाभि ने यह वर्ष अपने पुत्र तीर्थंकर ऋषभ को सौंप दीक्षा ग्रहण की। बाद मे इसे ऋषभ ने अपने पुत्र 'भरत' को सौंप दिया और तब से हिमालय से समुद्र पर्यन्त भूखण्ड का नाम 'भारत' पडा। अचल, अद्रि, पर्वत एकार्थ वाचक शब्द हैं और पर्वत का भाव ऊँचे ढेर से है। प्रकारान्तर से इसे आलय (घर) शब्द से भी सबोधित किया जाता है। आदि पुराण मे हमे इन सभी से सबधित नाम मिलते हैं। जैसे हिमाचल, हैमाचल, हिमाद्रि, हिमवान्, हिमवन्, आदि। हिमालय भी इन्हीं का नामान्तर होना चाहिये। जैनेतर पुराणो मे 'हिमवर्ष' नाम का उल्लेख मिलता है, वह हिम-प्रधान देश ही है। और वह हिमालय है। बाद मे जब सम्राट् (चक्रवर्ती) भरत ने विजय करके इस वर्ष का विस्तार किया तब यह वर्ष 'भारतवर्ष' कहलाया। इस प्रकार सभी दृष्टियो से इस देश और इसके भूखण्ड पर जैन-सस्कृति व्याप्त रही है और यहाँ जैनतीर्थंकरो, श्रमणदिगम्बर मुनियो और जैन सम्राटो का पूर्ण प्रभाव रहा है।

भागवत मे एक स्थान पर कहा गया है—

'विदितानुरागमापौर प्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मज समयसेतुरक्षाया मभिषिच्य सह मरुदेव्या विशालाया[1] प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन महिमानमवाप ।'
श्रीमद्भागवत ५।८।५

इसका भाव ऐसा है कि नाभि ने अपने पुत्र (ऋषभ) को राज्य देकर मरुदेवी के साथ समाधि (वैराग्य-दीक्षा अथवा तप) को धारण कर महिमा को प्राप्त किया। यहाँ महिमा का अर्थ आत्म-परक है, क्योकि लोक-महिमा (राज्य-सपदा) से तो वे विरक्त ही हो चुके थे।

'विशाला' क्षेत्र सभी प्रकार से विशाल था। यहाँ तीर्थभूमि, देवभूमि तथा ऋषिभूमि सभी का समन्वय था। यहाँ देव भी रहते थे, ऋषि भी रहते थे और यह तीर्थ भूमि भी थी। कहा भी है—

तीर्थाना वसतिर्यत्र, देवाना वसतिस्तथा।
ऋषीणा वसतिर्यत्र, विशाला तेन कथ्यते ॥'
—स्कन्दपुराण ?

यही विशाला आज 'बद्रीविशाल' नाम वाचक है जहाँ नाभि ने तप किया। जैसे पुराणो मे और जैन शास्त्रो मे जम्बूद्वीप के नामकरण मे जम्बूवृक्ष[2] कारण माना गया है हो सकता है कालान्तर मे वैसे ही 'विशाला' के नाम मे बदरी वृक्षो[3] की बहुतायत के कारण बदरी विशेषण लगकर 'बद्रीविशाल' प्रचलित नाम बना हो। आज इसे बहुत से लोग बदरिकाश्रम[4] भी कहते हैं। इसी स्थान मे नाभि और मरुदेवी ने समाधि ग्रहण की।

आदिमनु नाभि को उनके पिता ने 'हिमवर्ष' प्रदान किया जो जम्बूद्वीप के दक्षिण मे स्थित था। नाभि के पुत्र ऋषभ हुए और ऋषभ देव की माता मरुदेवी थी। यह उल्लेख निम्न रूप मे पाया जाता है—

---

१ विशालाया बदरिकाश्रमे—श्रीधर टीका, काशी
विशालफलदा प्रोक्ता विशाला।'

२. 'जम्बूद्वीप समस्तानामेतेषा मध्यसस्थित ।
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने ।
—विष्णुपुराण २/२/७

३ यत्रास्ते बदरीवृक्षो बहुगन्धफलान्वित ।'
—वृ० ना० २/६७/५

४ तेषा मध्ये महत्पुण्य बदरिकाश्रममुत्तमम् ।'
—पद्मपुराण ६/२/१

'पितादत्त हिमाह्वतुवर्षं नाभेस्तु दक्षिणम् ।'

—विष्णुपुराण २।१।१८

दक्षिण दिशा मे स्थित हिमनामक वर्ष पिता ने 'नाभि' को दिया (ये नाभि-जैन तीर्थंकर ऋपभदेव के पिता थे)

'हिमाह्वय तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मन' ।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मरुदेव्या महाद्युति ॥'

त्रिष्णुपुराण २।१।२७

—हिमनामक वर्ष नाभि का था और नाभि के रानी मरुदेवी से ऋपभ नामापुत्र हुए। ये ऋपभ तीर्थंकर जैनियो मे प्रथम तीर्थंकर है।

ऋपभ तीर्थंकर से इस वर्ष (क्षेत्र) का राज्य जैन-सम्राट् (चक्रवर्ती) भरत (तीर्थंकर के पुत्र) को मिला और इसके कारण इस वर्ष को 'भारतवर्ष' कहा जाने लगा। तथाहि—

'ततश्च भारतवर्षमेतल्लोकेषुगीयते ।
भरताय यत पित्रा दत्त प्रातिष्ठिता वनम् ॥'

विष्णुपुराण २।१।३२

—जव पिता ने भरत को राज्य दिया और स्वय वन को (तपस्या हेतु) चले गये तव से यह वर्ष 'भारतवर्ष' कहलाया। इस प्रकार हिमालय जैन-सस्कृति का केन्द्र रहा है। भरत चक्रवर्ती महान् प्रभावशाली जैन सम्राट् थे। देवगण भी इनकी[1] और इनकी भूमि 'भारत'[2] की सतत् प्रशसा और स्तुति किया करते थे। वे कहते थे देवताओ के प्रिय तो आप ही हैं हम तो नाम मात्र को देव हैं। सम्पूर्ण जगतविजयी ही देवो को प्रिय होता है। आपने भी जगत को जीता है। भरत चक्रवर्ती ने छह खण्ड को विजय किया। इस प्रसग मे आचार्यों ने हिमालय को जिन नामो से सबोधित किया उनमे कुछ यहाँ उद्धृत है। इनसे स्पष्ट है कि जैन-सस्कृति जैन-तीर्थंकर, जैनमुनियों और जैन सम्राटो से हिमालय का कितना घनिष्ठ सवध था ?

---

१ देवानांप्रिय देवत्व तवाशेपजगज्जयात् ।
नाम्नैव तु वय देवा जातिमात्रकृतोक्तय ॥'

—आदिपुराण २१/१०१

२ गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे
स्वर्गापवर्गस्पदमार्गभूते भवन्तिभूय पुरुपा सुरत्वात् ॥'

—विष्णुपुराण २/३/२४

'हिमाचलमनुप्राप्तः तत्तटानि जयं जयम् ।' महापुराण ३२।८४
'तुंगोऽयं हिमवानद्रि अलघ्यश्चपृथग्जनै. ।' " ३२।६२
'हिमाद्रि शिखरेष्वद्य जृम्भते ते जयोद्यमः ।' " ३२।६५
'कीर्ति· स्थलाञ्जिनीवास्य रूढा हैमाचलस्थले ।' " ३२।१६१
'हिमवद् विजयार्द्धाद्रिगगासिन्धुतटावधि· ।' " ३२।५५

इस वर्ष मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज हिमालय में पधारे। वे बहुत ऊपर 'चरणपादुका' स्थान पर भी गये। वदरी विशाल मन्दिर मे उनके प्रवचन हुए, उन्होने मूर्ति को भी देखा। श्रावको ने भी निर्वाण-दर्शन किये। मूर्ति के सबध मे श्री केदारनाथ शास्त्री के विचार हैं—

'कहते हैं कि श्री वदरीनाथ जी की वर्तमान मूर्ति पौराणिक काल की वही प्राचीन मूर्ति है, जिसको नारद पूजते थे। वौद्धकाल मे उस मूर्ति को बौद्ध लोगो ने अलकनन्दा मे डाल दिया था। सातवी या आठवी शताब्दि मे ईश्वरीय प्रेरणावश आदिगुरु शकराचार्य ने दक्षिण भारत से यहाँ आकर उस मूर्ति को नारदकुण्ड से निकालकर तप्तकुण्ड के पास गरुडकोटि नाम की गुफा मे स्थापित किया। तब से श्री वदरीनाथ जी की पूजा दक्षिण भारत के नम्बूद्री जाति के ब्राह्मण करते हैं जिन्हे रावल कहते हैं। कोई इस मूर्ति को बौद्ध भगवान की और जैन लोग इस मूर्ति को पारसनाथ अथवा ऋषभदेव की बतलाते हैं।'

—बद्रीनाथ यात्रा, (केदारनाथ शास्त्री) पृ० ५६ [१६४७]

उक्त उद्धरण से यह तो विदित होता है कि मूर्ति वौद्ध-भगवान की तो नही है। अन्यथा बौद्ध इसे अलकनन्दा मे फेंककर अपने उपास्य का अपमान न करते। जो भी हो, हिमालय मे जैन-सस्कृति के पद-पद पर दर्शन होते रहे हैं। वहाँ जैनो का भी किसी समय वाहुल्य था ऐसा कहा जाता है।

मुनि श्री इस यात्रा मे माणागाँव तक गये। माणागाँव से आगे तिब्वत सीमा है। तिब्वत श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के जाने के उल्लेख भी मिले हैं।[1] इससे आगे थोलिंगमठ होते हुए मानसरोवर और कैलाश (२२०२८') जाया जाता है। कैलाश पर्वत से जैन तीर्थंकर ऋषभ देव ने तो निर्वाण पाया ही, वहाँ चक्रवर्ती भरत भी गये[2] और जिन मन्दिरो की वदना की। उक्त सभी पहलुओ से हिमालय मे जैन-सस्कृति के पद-पद पर दर्शन होते हैं।

१ 'साइन्स आफ कम्पैरेटिव रिलीजन्स'—१ जिल्द पृ० १६, लेखक श्री मेजर जनरल जे० सी० आर० फर्लाङ्ग।

२ 'कैलाशशैलसान्निध्य प्रापतच्चक्रिणोवलम् ।'
कैलाशाचलमभ्यर्णम् अथालोक्य रथाङ्गभृत् ।
निवेश्य निकटे सैन्य प्रययौ जिनमर्चितुम् ।"
—महापुराण, जिनसेनाचार्य, ३३।११-१२

हिमालय में दिगम्बर-मुनि

माकन्द स हि यस्य वाग्रसझरीं पीत्वा भवेन्नीरसो ।
दृष्ट्वा सप्रतिभे दृशौ स चपलो ह्नीणो घनाडम्बर ॥
पाय पायमुपैति तृप्तिमपि नो तेजश्छवि मानवो ।
'विद्यानन्द मुनि' नमामि महित मेष्य च दिग्वाससम् ॥१॥

जिनकी पवित्रवाणी के निर्झरो को पीकर पुष्पो का रस नीरस लगता है, प्रतिभापूर्ण नेत्रो को देखकर चपलायुक्त वादलो की आभा फीकी पड जाती है और जिनकी आकृति की तेजपूर्ण कान्ति को देखकर मनुष्य तृप्ति को प्राप्त नही होता—उन्हीं दिगम्वर मुनि श्री विद्यानन्द को मैं नमस्कार करता हूं ।

सूत्रपात और दृढ़ीकरण

स्वाभाविक और अनिर्मित होने के कारण प्रकृति सदा से सभी के आकर्षण का केन्द्र रही है । एतावता इसमे विचरण करने की सभी की इच्छा होती है । जैन-दर्शन के अनुसार यदि प्रति पदार्थ भी समस्त वैभाविक परिणतियो को छोड स्वाभाविक प्रकृति—रूप में आ जाय तो कल्याण ही कल्याण है । आत्मा की उत्कृष्ट अवस्था भी तो उसकी अपनी प्रकृति ही है । जव यह जीव पर-परिणतियो का परित्याग कर देता है और निज परिणति अर्थात् शुद्ध ज्ञान-दर्शन मे आ जाता है तव इसे ही मुक्त कहते हैं और मुनिजन इसी पद की प्राप्ति का यत्न करते हैं ।

प्राकृतिक सौन्दर्य कैसा होता है ? इसके स्पष्ट रूप मे हमे दर्शन तव हुए जव हम पूज्य १०८ मुनि श्री विद्यानन्द जी के साथ हिमालय पर्वत के १२३०० फुट ऊँचे उत्तुग-शिखरो तक पद-यात्रा करते चले गये । मार्ग मे जैसी सुख-शान्ति का हमें अनुभव हुआ वह वचनातीत है । मात्र गूंगे के गुड खाने के स्वाद जैसा है । फिर भी हमारी इस यात्रा के सुख का आभास जन-जन तक पहुँचे और वह आदि तीर्थंकर श्री वृषभदेव की तप स्थली इस पर्वतराज के माहात्म्य को समझे, इधर की यात्रा करे इस उद्देश्य से कुछ लिखा जा रहा है ।

जैन-शास्त्रो मे जम्बूद्वीप[1] का वर्णन करते हुए आचार्यों ने अनेक क्षेत्रो और पर्वतो का उल्लेख किया है। पर्वतो मे एक पर्वत 'हिमवन' नाम का भी बताया है। उक्त पर्वत कहाँ है, यह तो बतलाया नही जा सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि यदि हम शब्दार्थ पर विचार करें तो 'हिमवन' और 'हिमालय' दोनो मे लगभग अर्थसाम्य अवश्य है। हिमालय को देखकर हम यह कल्पना अवश्य कर सकते हैं कि यदि हिमालय पर्वत हिमवन-पर्वत से भिन्न है तो भी हिमवन का रूप हिमालय सदृश अवश्य है। जो भी हो, हिमालय वास्तव मे हिम का आलय है इसमे सन्देह नही।

कहते हैं, जब मुनि श्री विद्यार्थी रूप मे थे और पाठ्य-पुस्तको मे हिमालय की महिमा कथाओ और राष्ट्रीय-गीतो के माध्यम से पढते और अध्यापको के मुख से सुनते थे तब उन्हे इच्छा और उमङ्ग उठती थी कि वे कभी इसका अवलोकन करे और इसमे विहार करें। वास्तव मे 'जाकी रही भावना जैसी' के अनुरूप कार्य हो ही जाता है। फलत धीरे-धीरे समय बीतता गया और कालान्तर मे समय पाकर साधक की साधना फलीभूत हुई।

मुनि श्री ने जब सन् १९६५ मे फिरोजाबाद (आगरा) मे चतुर्मास किया तब वहाँ के धर्मानुरागी सेठ छदामीलाल जी ने चर्चा चलाई कि महाराज, हिमालय पर श्रीनगर—गढवाल मे तीर्थंकर वृषभदेव का एक भव्य जिन-मन्दिर है। यदि खोज की जाय तो ऐसा मालूम हो सकता है कि उस प्रदेश मे किसी समय जैनो की अच्छी सख्या रही होगी। इसके साथ ही मुनि श्री ने स्वय पढ रखा था कि हिमालय पर्वत पर जैन तीर्थंकर वृषभदेव ने कुछ काल बिताया था। इस बात की पुष्टि इससे भी हुई कि कैलाश पर्वत से—जिसे अष्टापद भी कहते हैं, उन्हे मोक्ष हुआ है, जो हिमालय के उत्तुङ्ग शिखरो मे ही सुना जाता है। इस समय हम उस विवाद मे नही जा रहे कि हिमवन या कैलाश इस हिमालय और कैलाश से भिन्न है या यही हैं। हम तो अर्थ साम्यता की धारणा पर चल रहे हैं और वह भी कुछ यात्रा-वर्णन और यात्रा के प्रयोजन मात्र को ध्यान में रखकर।

सन् १९६६ मे दिल्ली पचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय बम्बई के सेठ श्री रतनचन्द हीराचन्द, श्री कलन्त्रीबाई जैन बम्बई, श्री ब्र० सुमतिबाई शाह शोलापुर आदि मुनि श्री के दर्शनो को आये और उन्होने बतलाया कि श्रीनगर गढवाल मे भव्य जिन-मन्दिर है और बद्रीनाथ की मूलमूर्ति सभवत आदि तीर्थंकर श्री वृषभदेव की है, आदि। ऐसा सुनकर मुनि श्री ने सेठ जी से

1 अथ देशोऽस्ति विस्तारी जम्बूद्वीपस्य भारते।—आचार्य जिनसेन

अनेको ऊहापोह किये और उनकी भावना वलवती हुई कि—अवश्य ही किसी भाँति इस पर्वतीय प्रदेश मे विहार किया जाय।

सन् १९६८ मे वडौत (मेरठ) चतुर्मास के अवसर पर ऐसा योग वना कि मेरठ निवासी 'साहित्यकार' श्री विशम्भर सहाय 'प्रेमी' सपादक पचायती-राज और वद्रीनाथ क्षेत्र के प्रमुख 'रावल श्री वी० केशवन नम्वूदिरी जी' मुनिराज के निकट वडौत पहुँचे और चर्चा के मध्य रावलजी ने वद्री विशाल का परिचय देते हुए मुनि श्री से अनुरोध किया कि 'आप वद्रीनाथ पधारे' आदि। उक्त प्रसग क्रमश मुनि श्री की इधर विहार करने की भावनाओ की कडी से कडी जोडते गये और भूमिका तैयार होती गई।

वडौत से विहार कर मुनि श्री ने जव हरद्वार, कनखल, ऋषिकेश, देहरादून, सहस्रधारा, विकासनगर, डाक पत्थर आदि पर्वतीय प्रदेशो को देखा तव ऐसा लगा कि इधर शान्ति का साम्राज्य होना चाहिये। यदि किसी को जप-तप-ध्यान और स्वाध्याय का आनन्द लेना हो तो इधर ही रहना चाहिये। इधर चारो ओर दूर-दूर तक हरियाली है। स्रोतो और नदियो का कल-कल नाद यद्यपि नीरवता को भङ्ग अवश्य करता है परन्तु वह सासारिक पुरुषो की भजन मे वाधा कारक वाणी से सर्वथा विपरीत और सुख-चैन को देने वाला है। फलत विकास नगर से सहारनपुर आते-आते मुनि श्री के विचार और गाढ हो गये कि—हिमालय-यात्रा अवश्य करनी चाहिये।

विचार विनिमय और विहार

यात्रा का प्रारम्भ

साहू परिवार अपनी धर्म-वत्सलता के लिये प्रसिद्ध रहा है। वर्तमान मे श्रावक शिरोमणि, दानवीर साहू श्री शान्ति प्रसाद जैन और धर्मानुरागिणी सौ० श्री रमारानी जैन उसके दृढ स्तम्भ हैं, जो सदा धर्म-कार्यों मे अग्रणी रहकर अपने कुल, धर्म और समाज की परम्पराओं का निर्वाह करते रहते हैं।

प्रसगवश साहू दम्पति का सहारनपुर नगर मे आगमन हुआ। वहाँ जम्वू जैन कालिज मे उत्सव और स्वनामधन्य तीर्थभक्त शिरोमणि स्व० ला० जम्वू प्रसाद जी की प्रस्तर-मूर्ति-स्थापन का मुहूर्त था। साहू जी इसके अध्यक्ष थे। उत्सव के पश्चात् जव साहू जी से मुनि श्री की चर्चा चली तब विचार-विनिमय मे प्रसग से मुनि श्री ने उन्हे अपने भाव प्रकट किये कि—'हमारी भावना तो श्रीनगर-गढवाल और हिमालय की ओर जाने की है। नाभिराजा, मरुदेवी व वृषभदेव की तपोभूमि और तीर्थंकर पार्श्वनाथ की विहार-स्थली

यहाँ से अपेक्षाकृत निकट है। यदि अभी जाना न हुआ तो फिर इधर जाना कब होगा—कौन जाने ? पद यात्रा ही तो हमारा नियम है अत इस बार इधर जाना ही है।'

धर्मात्मा तो धर्म ही देखते हैं। सेवा भी एक धर्म है। साहू श्री ने जब मुनिराज के विचार सुने तब सोचा—यह सेवा का सुवर्ण अवसर है। वे जानते थे कि दिगम्बर मुनि तो अन्तरग-बहिरग दोनो प्रकार से दिगम्बर ही होते हैं। वे कब किसी को क्यो सेवा की चाहना प्रकट करने लगे ? हो न हो मुनि श्री की यात्रा के बहाने कुछ साधर्मी श्रावको की सेवा का ही अवसर हाथ आयेगा। वे बोले—महाराज जैसी भी होगी उचित व्यवस्था हो जायगी हम मार्ग का सब प्रबन्ध करायेंगे। मुनि श्री ने कहा—यह निश्चय तो नजीबाबाद जाकर ही हो पायेगा कि कौन-कौन और कितने व्यक्ति वहा जाना चाहेंगे। तदनुसार आप उनकी व्यवस्था देख लीजियेगा। बस, बात पूरी हुई और आगामी दिन दिनाक २९ मार्च १९७० को मुनि श्री का विहार नजीबाबाद की ओर हुआ। सहारनपुर निवासी श्री कैलाश चन्द जैन मन्त्री दिगम्बर जैन समाज प्रभृति जैन-अजैन जन-समुदाय ने विहार मे भावभीना सहयोग दिया।

[नजीबाबाद तक]

निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियो की पद-यात्रा **'मंगल-विहार'** नाम से प्रसिद्ध है। साधारणतया यात्रा तो ससार के प्राणी मात्र करते हैं। यहाँ तक कि जिन शासन मे तो परमाणु मात्र को भी निरन्तर यात्राशील [गुण और नवीन-नवीन-पर्यायो पर जाने से] बतलाया है। परन्तु वह मात्र यात्रा होती है। मगल विहार मे तो स्व और पर दोनो के मगल निहित हैं। जहाँ-जहाँ निर्ग्रन्थमुनि विहार करते हैं वहाँ-वहाँ दूर-दूर तक चारो ओर मगल ही मगल होते हैं। मुनि श्री मगल विहार करते हुए देवबन्द पहुँचे।

देवबन्द

यह स्थान उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले की एक तहसील है। यहाँ जैनो की अच्छी सख्या है। जिन मन्दिर और शिक्षा सस्थाएं भी उत्तम हैं। यह स्थान मुस्लिम सम्प्रदाय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह मुस्लिम-(अरबी) शिक्षा का केन्द्र है। यहाँ पर एक मुस्लिम यूनिवर्सिटी है। इसमे विश्व के समस्त देशो के मुस्लिम छात्र, जो कुरान शरीफ मे पारगत होना चाहते हैं—प्रवेश लेते हैं। यहाँ की उपाधि प्राप्त कर लेने के बाद ही कोई मुस्लिम अपने



[मुनि श्री के मगलविहार और श्रमण सस्कृति ध्वज लहलहाने का दृश्य]

को क़ुरान का निष्णात विद्वान् कहलाने का अधिकारी होता है। ऐसे स्थान मे मुनि श्री का विहार करना आश्चर्य की बात है। नगर मे प्रवेश करने से पूर्व लोग सशक थे कि ऐसे प्रदेश मे दिगम्बर मुनि द्वारा दिगम्बर धर्म की जय-दुन्दुभि कैसे बजेगी और स्याद्वाद की जय-पताका कैसे फहराई जा सकेगी? पर, मुनि श्री को यह सर्वथा सरल था। वे अपने विचारो मे अडिग रहे। उन्हे तो जिन शासन का महात्म्य बतलाना ही था। बोले—सब ठीक हो जायगा। ठीक ही है—जहाँ अहिंसा धर्म हो, वहाँ किसका भय? कहा भी है—

'य लोका असकृन्नमन्ति ददते यस्मै विनम्राजलिम्
मार्गस्तीर्थकृतां स विश्वजगतां धर्मोऽस्त्यहिंसाभिध।
नित्यं चामरधारिणाविवबुधा· यस्यैकपार्श्वे महान्
स्याद्वाद· परतो बभूवतुरथाऽनेकान्त-कल्पद्रुम·॥'

—जिसे ससार निरन्तर नमस्कार करता है, जिसे अपनी विनम्र अजलि समर्पित करता है, वह तीर्थंकरो द्वारा निर्दिष्ट सम्पूर्ण ससार का मान्य धर्म 'अहिंसा' है। उस अहिंसा धर्म के एक पार्श्व मे स्याद्वाद और दूसरे पार्श्व मे अनेकान्त रूप कल्पद्रुम स्थित है। मानो, किसी सम्राट् के दोनो ओर दो चामरधारी स्थित हों। बस, क्या था—

देवबन्द मे भी स्याद्वाद-अनेकान्त की जय-पताका फहराई। मुनि श्री का नगर मे पदार्पण होना था कि विविध भेरियाँ बजने लगी। जन समुदाय उमड पडा और मुनि श्री विद्यानन्द महाराज की जय, अहिंसा धर्म की जय, विश्व धर्म की जय से आकाश गूँज उठा। मार्ग की यह दशा थी कि जन-समूह के कारण आकाश मे उठती हुई धूलि पता नही लगने दे रही थी कि—'भूमि मे गगन है कि भूमि है गगन मे।'

यहाँ मुनि श्री का अपूर्व स्वागत हुआ। मुनि श्री ने कई दिनो हजारो-हजारो की सभा मे जिन धर्म का डका बजाया। मुस्लिम यूनिवर्सिटी के आचार्य और शिक्षक भी अपने छात्रो और दल बल सहित प्रवचनो मे आते रहे, धर्म सुनते रहे। सभी इतने प्रभावित और हैरान थे कि किन शब्दो मे मुनि श्री का गुणानुवाद करें? वे अनेको बार मुनि श्री के ठहरने के स्थान पर आ आकर श्रद्धापूर्वक नत-मस्तक होते रहे। मुनि श्री के साथ चर्चा होती थी और वे प्रभावित होकर जाते थे। उन्हे मुनि श्री-निर्मित-साहित्य भी भेंट किया गया। इस प्रकार वहाँ धर्म की महती प्रभावना हुई। लोगो को आश्चर्य हुआ। पर यह आश्चर्य की बात नही।

मुनि श्री की आकृति और वाणी मे प्रभाव ही ऐसा है जो सदा ही बा-असर होता है। आखिर, क्यो न हो ? जहाँ स्वार्थ भावना का त्याग और परमार्थ-वृत्ति का मार्ग होता है वहाँ विजय ही विजय होती है। फिर, दिगम्बर मुनि तो परमार्थ के साक्षात् प्रतीक हैं। उनके द्वारा प्रभाव क्यो न हो ? जब उनकी वाणी मे स्याद्वाद और विचारो मे अनेकान्त है—

'विचारेऽनेकान्तश्चरितपरिपाटीस्ववधिक. ।
परिग्राह-ग्राह्यान्मथनपटिमाऽऽचारसरणौ ॥
समर्थ स्याद्वादो वचसि ननु सापेक्षसजुषा ।
समीचीन पन्था जयति जिन सर्वोदयकृताम् ॥'

—सर्वोदय धर्म के आविष्कर्ता तीर्थङ्कर जिनेन्द्र ने विचारो मे अनेकान्त आचार मे अहिंसा तथा परिग्रह रूप ग्राह को उन्मथन करने वाले समाज की रचना करने मे चतुर अपेक्षादृष्टि से वचन (वाणी) मे स्याद्वाद रूप समीचीन तीर्थ की रचना की है—उसकी जय हो।

बिजनौर

देवबन्द से विहार कर मुनि श्री ने बिजनौर जिले मे प्रवेश किया। इस जिले मे और इधर के अन्य स्थानो मे कभी कोई दिगम्बर मुनि नही आये अत· जहाँ मुनि श्री जाते वहाँ लोगो मे उत्साह की लहर दौड जाती। वे कौतूहलवश भी नग्न—श्रमण दिगम्बर मुनि के पवित्र दर्शनो को लालायित हो उठते।

बिजनौर मे जैनो की अच्छी जनसख्या है। लोग सम्पन्न और धर्मात्मा भी हैं। यहाँ जैन कालिज, जैन पाठशाला, जैन मन्दिर आदि अनेको उत्तम धर्म साधन हैं। समाज मे श्री रतनलाल वकील आदि अनेको उत्साही कार्य-कर्त्ता हैं। यहाँ पहुचने पर मुनि श्री का भव्य स्वागत हुआ। प्रवचन के लिये भव्य-पण्डाल की रचना की गई। कई दिनो मुनि श्री के प्रभावक प्रवचन हुए। इस वर्ष की महावीर जयन्ती यही हुई। सघ के कुछ सदस्यो को यहाँ से दिल्ली जाना पडा। क्योकि वहाँ 'श्री श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ' की ओर से नई दिल्ली के 'मावलकर हाल' मे सगीत सम्मेलन की व्यवस्था की गई थी। इस उत्सव का उद्घाटन डा० वी० के० आर० वी० राव शिक्षा-मन्त्री ने किया और सचालन कार्य उक्त सघ के अध्यक्ष, श्रावक शिरोमणि साहू शान्ति प्रसाद जैन के तत्त्वावधान मे हुआ। इस वार का सगीत-पुरस्कार दिल्ली की श्रीमती डॉ० हेम भटनागर को प्रदान किया गया। इन्होने अपनी कृति

'शृगार युग मे सगीत काव्य' मे जैन सगीत के विषय और उसकी मौलिकता व प्राचीनता पर गहरा और खोजपूर्ण प्रकाश डाला है। इससे जैन-सगीत की आच्छादित परम्परा पुन प्रकाश मे आई है।

यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि 'श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ' को स्थापित हुए अभी अल्पकाल ही हुआ है। इस अल्पकाल मे ही सघ ने १२ भजनो के रिकार्डो का निर्माण करा लिया है। सघ के प्रयत्नो से रेडियो अधिकारियो ने भी जैन भजनो का नियमित रूप से प्रसारण प्रारम्भ कर दिया है। हम सघ की प्रगतियो हेतु साधुवाद देते हैं।

विजनौर मे मुनि श्री के दर्शनार्थ दिल्ली के धर्मानुरागी श्री ला० राजेन्द्र कुमार जैन, वम्वई के श्री जगत प्रसाद जैन आदि सपरिवार पधारे और इन्होने मुनि श्री को आहार भी दिया। लाला जी विजनौर के कर्मठ व्यक्ति हैं। विजनौर का जैन कालिज आपकी ही देन है जो जिले मे अपना प्रमुख स्थान रखता है।

मुनि श्री यहाँ से विहार कर जिले के अन्य अनेको प्रमुख स्थानो मे भी गये। इन स्थानो मे नहठौर, धामपुर, किरतपुर और नगीना मे विशेष धर्म प्रभावना हुई। धामपुर गर्ल्स कालिज मे मुनि श्री के प्रवचन हुए। यहाँ मुस्लिम छात्राओ ने मुनि श्री से धर्म विषयक जानकारी प्राप्त की। छात्राएँ बी० ए० श्रेणी की थी। कालिज के प्रिंसिपल वरावर सघ की सुविधाओ का ध्यान रखते रहे उन्होने कालिज का अवलोकन—परिचय कराया और मुनि श्री ने छात्रो व अध्यापको को शुभाशीर्वाद दिया। इसके बाद सघ नगीना से नजीवावाद की ओर विहार कर चला।

नजीबाबाद

सघ नजीवाबाद के निकट पहुँच रहा था कि मीलो पहिले से ही बाजो और जयकारो की ध्वनि कानो मे गूंज उठी। सहस्रो की सख्या मे नर-नारी, आवाल-वृद्ध, जिधर से मुनि श्री आ रहे थे—स्वागत को दौड पडे। जन-समूह पर वडी कठिनाई से व्यवस्थापको ने कावू पाया। नगरी के द्वार पर जाकर हमने देखा कि नगरी मे वैभव विखरा पडा है। मानो वह अपने को मुनिराज के चरणो मे न्यौछावर कर रही हो। पर मुनि श्री को इन वैभवो से क्या ? वे तो विरक्ति मे ही सुख ढूंढ पाये है। ठीक ही है—

'न चेन्द्रस्य सुख किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिन ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविन ॥'

पूज्य १०८ श्री मुनिराज समंतभद्र जी का आशीर्वाद

"धर्म प्रभावने च्या मुख्य उद्देश्याने आपली जी ही धर्मयात्रा हिमालया कडे सुरु झाली आहे ती सर्वदृष्टीने सफल होऊन जैनधर्माची खूब प्रभावना आपल्या सारख्या मुनीरत्नाकड्न होवो व त्यासाठी उपयोगी पडणारे आत्मीक सामर्थ्य—मानसिक शक्ति व शारीरिक बल हे सर्व आपणास चागले प्राप्त होवो।"

श्री बाहुबली विद्यापीठ परिवार की शुभकामना

'आपला मगलमय विहार गतवर्षप्रमाणे याहि वर्षी हिमालयाच्या उत्तुङ्ग शिखरावर (सुभारे १२००० फुट) उचावर असलेल्या होणार असल्याची शुभवार्ता ऐकून आश्रमस्थ सर्व शिक्षक आणि विद्यार्थी जनाला अत्यन्त आनन्द वाटला। आश्रमस्थ शिक्षक व मुलातर्फे मीहि आपली धर्मयात्रा निर्विघ्नपणे पारपडून जैन धर्माचे श्रेष्ठत्व भारतवासी याच्या चागले लक्ष्यात येवो असे भाव व्यक्त करीत आहे।'—

आपला विनीत
बालचन्द खेमचन्द जैन
११-४-७०

नगरी मे स्थान-स्थान पर द्वार सजाये गये थे और पूरा मार्ग झंडियो तथा नीति-वाक्यो के विविध पदो से शोभायमान था। जैसे ही मुनिश्री पहुँचे, नगर-द्वार पर मुनिश्री के स्वागतार्थ अनेको धन कुवेर खड़े दृष्टिगोचर हुए। सभी सपरिवार, सादगी व विनम्रभाव से मुनिश्री के चरणो मे दृष्टि लगाये थे। इनमे श्री साहु श्रेयासप्रसाद बम्बई, श्री साहु शान्तिप्रसाद दिल्ली, श्री शीतलप्रसाद कलकत्ता और श्री साहु रमेशचन्द दिल्ली आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ आदि अनेक विशिष्ट महानुभावो ने भी कार्यक्रमो मे पूरा भाग लिया।

जैसे ही भीड आगे बढ़ी उसने जुलूस का रूप धारण कर लिया। और वह अपने अभीष्ट स्थान की ओर वढ चली। मुनिश्री के ठहरने और प्रवचनो की व्यवस्था श्री मूर्तिदेवी इण्टर कालिज मे सुव्यवस्थित ढग से की गई थी। कालिज का प्रागण खूब सजाया गया था और देखते ही वनता था। मुनिश्री यहाँ ठहरे और कई दिनो ठहरे। सभी पुण्यात्माओ ने आहार दान का लाभ लिया। प्रतिदिन मुनिश्री के प्रवचन हुए और महती धर्म प्रभावना हुई। यहाँ के सभी छात्र और अध्यापक लगनशील प्रतीत हुए। प्रिन्सिपल श्री आर० एन० केला ने भी अथक परिश्रम कर पुण्यलाभ लिया।

हिमालय यात्रा की व्यवस्था और विहार

सहारनपुर की चर्चा का साहु दम्पति को पूरा ध्यान था और वे मुनिश्री की हिमालय पर्वत जैसी महत्त्वपूर्ण एव दुर्गम यात्रा को चाहते हुए भी पर्वतीय प्रदेश की वाधाओ से चिन्तित थे। यद्यपि श्रमण दिगम्वर मुनि 'क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्या शय्याक्रोशवधयाचना-लाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि' सूत्र-प्रदर्शित बाईस परीषहो के सहन के अभ्यासी होते हैं और वे मुनिमार्ग मे दृढ रह सकने तथा अपने कर्मो को जीर्ण शीर्ण कर सकने की सामर्थ्य हेतु इनको सहन करते हैं। कहा भी है—'मार्गाच्यिवननिर्जरार्थंपरिषोढव्या परीषहा।'

तथापि यदि इन परीषहो मे से एक का भी विचार किया जाता है तो इनके सहन करने वाले मुनिराजो की असीम शक्ति पर आश्चर्य होता है कि मुनिजन किस भाँति शरीर की चिन्ता किए बिना कठोर व्रतो में दृढ रहते हैं। शरीर से शीतादिक की वाधा सहन करना तो कठिन है ही पर काम-वासना पर विजय पाना सर्वथा कठिनतम है। जव शत्रु समूह पर विजय पाने वाले महान योधा भी स्त्री-परिषह सहने मे असमर्थ हो जाते हैं, तव श्रमण

दिगम्वर मुनिजन नग्न रहकर भी अपनी परीक्षा मे सफलता प्राप्त करते है[1] और उनके लिये वह आश्चर्य की वात नही होती। इसीलिये तो कहा है—

'चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशागनाभि—
र्नीत मनागपि मनो न विकारमार्गं।
कल्पान्तकालमरुताचलतां चलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ?
—मानतु गाचार्य

साहु दम्पति को मुनिभक्तिरूप श्रावकोचित कर्तव्य निभाना उचित ही था—वे श्रावकशिरोमणि है। जहाँ वे मुनिराज एव धर्म के गौरव की मर्यादा सुरक्षित रखना चाहते है, वहाँ मुनिचर्या जैसी कठोर साधना मे सभावित-प्रतिकूल वाधाओ का परिहार करना भी उन्होने अपना परम कर्तव्य समझा। उन्होने अनुकूल अवसर पाकर मुनिश्री का ध्यान सघ की आगामी व्यवस्था की ओर आकृष्ट किया। विचार विनिमय के वाद हिमालय-यात्रा का निश्चय हुआ और मार्ग की व्यवस्था का दायित्व साहु दम्पति ने अपने पर लिया। उन्होने अपनी दो जीपगाडियाँ तीन सेवको सहित यात्रा मे सघ को सौंपी और अनुकूल आवश्यक धनराशि की भी व्यवस्था की। सघ ने निश्चित तिथि दिनाक ७ मई १९७० के प्रात मगलवेला मे हिमालय की ओर विहार किया।

श्री दरी गौडा पाटील मुनिश्री के पुरातन सेवक हैं वे साथ चले। सहारनपुर के श्री जितेन्द्रकुमार जैन विनम्र सेवाभावी युवक हैं। ये सहारनपुर चतुर्मास से ही मुनिश्री की परमसेवा करते रहे हैं। मार्ग के दायित्व को भी इन्होने सपत्नीक खूब निभाया। ला० मगलसैन व उनकी पुत्री सौ० उषाजैन अपने चौके की व्यवस्था मे सदा सावधान रहे। श्री राजकुमार सहारनपुर व वेटी कुमारी उमा जैन ने भी सभी कार्यो मे पूरा सहयोग दिया। श्रीनगर से जोशीमठ वापिसी तक दिल्ली के धर्मानुरागी ला० सागरचन्द जैन सपरिवार साथ रहे और क्रमश आहारदान का लाभ लेते रहे। सभी की लगन और सेवा भाव को धन्य है। 'सेवाधर्म परमगहनो योगिनामप्यगम्य।'

सनेह रोड

नजीवावाद से चलकर जब मुनिश्री सनेहरोड के निकट पहुँचने को थे, मार्ग का दृश्य देखकर हमे स्मरण हो आया—

---

१ 'अन्तर विपयवासना वरतै, वाहर लोक लाज भयभारी।
तातैं परमदिगम्वर मुद्रा, धर नहिं सकैं दीन ससारी॥'
—पार्श्व पुराण

'जाति न पूछो साधु की, पूँछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पडी रहन दो म्यान ।।'

वास्तव मे साधु वे हैं जो सबके हो और जिनमे स्वय भी अन्य लोगो के प्रति जाति-गत भेद न हो। सच्चे साधु अपनी वीतराग प्रवृत्ति से सबको प्रभावित किये रहते हैं क्योकि वे सदा ज्ञान ध्यान-तप मे लीन और विषयो की कामना से रहित होते हैं। कहा भी है—

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रह'।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ।।'
—समन्तभद्राचार्य

शास्त्रों मे साधुओ के पादारविन्द पडने मात्र का प्रभाव 'षट् ऋतु के फूल फले अपार' रूप मे गाया गया है। जब उनके आवागमन से वनस्पतियो तक मे नवीन चेतना जाग्रत हो जाती है तब मानव की तो बात ही क्या ? वह तो सज्ञी (ज्ञानी) प्राणी है। फलत सनेहरोड पहुँचते २ मार्ग मे मुनिश्री को पाकिस्तान से आकर बसे पुरुषार्थियो ने घेर लिया और वे मुनिश्री के चरणो मे नत होकर श्रद्धा के पुष्प चढाने लगे। उनके हर्ष की सीमा न रही। सघ के लोगो का उन्होने लस्सी-पानी आदि से स्वागत किया। 'तदन्न मेरुणा तुल्य तज्जल सागरोपमम् ।' उन्होने साधु और सघ के श्रावको से अपने को भिन्न नही माना। जात-पांत का भेद उन्हे भरमा न सका। वे साधु को साधु रूप मे ही जान पाये और साधु की साधुता से साथ के श्रावक सहज ही सत्कार रूप फल पा गये। ठीक ही है—'कीटोऽपि सुमनः सगादारोहति सतां शिर.।' अथवा 'सगत ही गुण ऊपजै सगत ही गुण जाय। बाँस फाँस अरु मीसरी एकहि भाव बिकाय।'

जब हमे ज्ञात हुआ कि ये सभी पुरुषार्थी पाकिस्तान से यहाँ आये और इन्होने घोर-वन प्रदेश को अपने परिश्रम से खेती योग्य बनाया, यहाँ बडे-बडे फार्म स्थापित किये। तब हमे 'उद्योगिन पुरुष सिहमुपैतिलक्ष्मी।' नीति वाक्य का स्मरण हो आया। इसी समय मुनि श्री ने कहा—'कुछ अज्ञप्राणी जब इन्हें शरणार्थी नाम देते हैं तब उनकी अज्ञता पर बडी दया आती है। वस्तुत इन्हें पुरुषार्थी कहना चाहिये। इन्होने घोर सकटो के आने पर भी अपना पुरुषार्थ नहीं छोडा।' सनेहरोड पहुँचकर श्री चमनलाल के फार्म मे ठहरे और प्रवचन किया। लोगो मे धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा हुई। रात्रि व्यतीत कर अगले दिन मुनि श्री आगे की ओर विहार कर गये।

कोटद्वार

'प्राकारकवलिताम्बरमुपवनराजीनिगीर्णभूमितलम् ।
पिवतीव नगरमिदं परिखावलयेन पातालम् ॥'
—समयसार कलश,

—इस नगर ने अपने प्राकार (परकोटे—चहारदीवारी) द्वारा आकाश को ग्रास रूप बना लिया है। इसका भूमितल उपवन की पक्तियो से व्याप्त है और नगर अपनी खोई द्वारा मानो पाताल को छू रहा है।

जिन्होने इतिहास एव शास्त्रों मे प्राचीन कालीन नगरो की शोभा को पढ़ा और उनकी रचना विधि का अवलोकन किया होगा वे भली भाँति जानते होगे कि नगरो की रक्षाहेतु ऊँचे-ऊँचे कोटो का निर्माण करवाया जाता था। नगर के चारो ओर चहारदीवारी होती थी। चलते-चलते जब हम कोटद्वार पहुँचे, हमे भान हुआ कि वास्तव मे विशाल भारत की रक्षा के लिये प्रकृति ने उत्तर मे हिमालय रख छोडा है। कोट का अर्थ है दीवार और द्वार का अर्थ है दरवाजा। फलत. यह नगर उत्तर भारत की रक्षक दीवार अर्थात् हिमालय रूपी कोट मे प्रवेश का द्वार होने से अपने नाम को सार्थक करता है। यहाँ से हिमालय का प्रारम्भ होता है। और दूर-दूर तक पर्वतशृखलाएँ दृष्टि-गोचर होती है।[1]

कोटद्वार नगर प्राचीन है। कहते हैं अब यहाँ पहिले की अपेक्षा जन-सख्या और भौतिक सुख समृद्धि आदि मे वृद्धि हुई है। बाजारो और भवनो के नव-निर्माण को देखकर ऐसा लगा कि-आज का मानव प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वार इस नगर को भी भौतिकता से अछूता न रख सका। भय है कि यदि अन्य तीर्थों की भाँति स्वाभाविक-रम्य प्राकृतिक सौन्दर्य युक्त हिमाचल रूपी तीर्थ मे भी भौतिकता घर कर गई तो वन-वासियो को प्राकृतिक आनन्द की प्राप्ति मे कारण भूत एकान्त—शान्तिसाधन सर्वथा दुर्लभ हो जायेंगे। यदि हम थोडी देर को सयमियो के प्रति यह सोच भी लें कि—

विजने जनसकीर्णे सुस्थिते दुःस्थितेऽपिवा।
सर्वत्राप्रतिबद्ध स्यात्सयमी सगवर्जित।"—ज्ञानार्णव

तथापि, सभी सयमी ऐसे नही होते। साधना के साधन तो सभी को अपेक्षित हैं। फिर श्रावको—साधारण गृहस्थो की दृष्टि से भी हमे विचारना होगा। और एकान्त स्थानो की एकान्तता की रक्षा करनी होगी। स्मरण रहे-आज अधिकाश तीर्थ नगर बनते जा रहे हैं और वहाँ वैराग्य का स्थान राग ग्रहण करने लगा है। वहाँ भौतिकता का विस्तार होता जा रहा है। समाज का

मुनि श्री विद्यानन्द



एकान्त-चिन्तन मे *(हिमालय के एकान्त स्थल मे)*

कर्तव्य है कि वह तीर्थों की एकान्तता तथा पवित्रता का ध्यान रख उन्हें भौतिकता से बचाये।

कोटद्वार पहुँचने पर मुनि श्री का भव्य स्वागत हुआ। नगर झडियो से सजाया गया था। नगर पालिका के पार्क मे दो दिन मुनि श्री के प्रवचन हुए। सभा मे सभी वर्ग और सभी सम्प्रदायो के लोग कन्धे से कन्धा भिडाकर प्रवचन सुनते रहे। मुनि श्री ने यहाँ आध्यात्मिक और व्यवहारिक शान्ति पर प्रकाश डाला। देश मे चल रहे वर्तमान सघर्षों के निवारण के उपायो पर प्रकाश डालते हुए मुनि श्री ने कहा कि 'यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म का पालन करने लगे तो समस्त सकट सहज ही दूर हो सकते हैं। उन्होने कहा-हानि तव होती है जव व्यक्ति अपने कर्तव्य को भूलकर कुर्सी के लिये सघर्ष करता है। जाति सम्प्रदायवाद की हानियो की ओर इशारा करते हुए मुनि श्री ने कहा कि जव पाकिस्तान मे कुत्ता, बिल्ली, चूहे, छिपकली आदि रह सकते हैं तब हिन्दू क्यो नही रह सकते। और जव हिन्दुस्तान के वगीचो मे तरह-तरह के रग-विरगे विविध फूल खिल सकते हैं, तव विविध सम्प्रदाय क्यो नही रह सकते? उन्होने कहा अनेकता मे एकता सुखदायक है। गुलदस्ता शोभा तभी पाता है जव उसमे विविध रगो और जातियो के पुष्प सजाये जाते हैं।'

यहाँ के नगर प्रमुख श्री किसनलाल अग्रवाल तथा कर्मभूमि के सम्पादक श्री भैरवदत्त धूलिया आदि ने मुनि श्री के चरणो मे श्रद्धा-सुमन चढाये। अनेको जिज्ञासुओ ने मुनि श्री से विश्व धर्म की श्रेष्ठता का महत्त्व जाना और अहिंसा, वात्सल्य आदि विश्वधर्म के विविध अगो मे आस्था प्रकट की। यहाँ पर श्रीनगर तक के मार्ग की जानकारी भी प्राप्त की गई। मुनि श्री ने दिनाक १० मई के प्रात आगे के लिये विहार किया।

दुगड्डा

साथ के श्रावक वढे जा रहे थे कि मार्ग मे कुछ साथियो को प्यास ने आ सताया। जहाँ हिमालय से निकलने वाली नदियाँ समस्त भारतवर्ष को सीचती हैं, उसकी प्यास बुझाती हैं, वहाँ हमे **'पानी मे मीन पियासी'** उक्ति वहुत अखरी। साथी पानी की खोज मे चलते ही रहे। सोचा—कैसी विकट समस्या है? यहाँ पानी है वहुत, पर है इतनी नीचे जाकर जहाँ जाना हम जैसो के लिये सर्वथा असम्भव है। हमने देखा ऊँची-ऊँची चोटियो से पहाडी महिलाएँ और वालक वर्तनो को लिये एक ओर वढे चले जा रहे हैं। सोचा-हो न हो इधर कही पानी अवश्य होना चाहिये। वस, कुछ आश्वस्त हुए।

मार्ग में आते एक पथिक ने हमें बताया कि पानी 'गाड' में मिलेगा। पास में एक झरना भी है वहाँ जाकर भी पिया जा सकता है। धीरे-धीरे हम सभी झरने की ओर बढ़े और प्यासों ने अपनी प्यास बुझायी। पर 'गाड' शब्द हमारे ऊहापोह का विषय बना रहा। बाद में पता चला कि इधर 'गाड' शब्द नदी अर्थ में प्रयुक्त होता है। हमने गन्तव्य स्थान 'दुगड्डा' में जाकर देखा वहाँ दो छोटी नदियों का प्रवाह एकरूपता को धारण किये है। फलत हमें 'दुगड्डा' नामकरण का मूल जानने में देर न लगी। जहाँ दो नदियाँ हों वह 'दुगड्डा'। वैसे आगे जाकर जहाँ अनेकों स्थानों पर दो नदियों का सगम होता है वे स्थान 'प्रयाग' नाम से प्रसिद्ध हैं। रुद्र प्रयाग, कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग, विष्णु प्रयाग सभी नदियों के सगम स्थान हैं।

'सगम' शब्द प्रकृति और पुरुष की समष्टि का द्योतक भी है और ससार भी षड्द्रव्यों की समष्टि है—इसी में विश्वपरिपाटी निहित है। पूज्य मुनि श्री यद्यपि पर से लगाव नहीं रखते। उन्होंने अन्तरग बहिरग दोनों प्रकार के परिग्रहों को त्याग दिया है। एकाकी चर्या, एकान्तवास उन्हें पसन्द है और होना भी यही चाहिये। क्योंकि—

'वासे बहूनां कलहो भवेद् वार्ता द्वयोरपि।
एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणम् ॥'

बहु समुदाय में कलह होता है यदि दो हों तब भी परस्पर वार्तालाप हो जाता है अत ज्ञानी को सदा एकाकी विचरण करना चाहिये। जैसे कुमारी कन्या के हाथ में प्राय. एक कङ्कण होता है अत वह शान्त (शब्द-विना) रहता है और सुहागिन की अनेकों चूड़ियाँ खन-खन शब्द करती रहती हैं।

मुनि श्री की इस पद यात्रा में साथ के श्रावकों को अनेक सुखद-सगम हुए जिस प्रदेश में चिरकाल से केवल एक ही मान्यता वाले स्त्री-पुरुष रहते रहे हों, वहाँ अन्य मत वाले व्यक्ति आकर उन गृहस्थों को अपने सौहार्द से प्रभावित करलें और वे सुश्रूषा के लिये आग्रह करें। देश की अखण्डता की स्थिरता में इस व्यवहार से श्रेयस्कर और कौनसा मार्ग हो सकता है?

सघ की यात्रा का प्रथम चरण 'श्रीनगर-गढवाल' में पूरा होना था। हमें पर्वतीय सुहावने दृश्यों के कारण कोटद्वार से श्रीनगर तक के ८५ मील के लम्बे मार्ग को पैदल तय करने में बड़े सुखों का अनुभव हुआ। जहाँ कहीं अप्रत्याशित रूप से कभी किन्हीं अप्रिय प्रसगों की सभावना भी हुई, वहाँ भी सघ के किसी व्यक्ति को किसी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। हम तो इसे परमपूज्य मुनि श्री का ही पुण्य प्रताप समझते हैं। आमतौर से जैसे वनों में

आग लग जाया करती हैं, मार्ग मे एक स्थान पर मीलो दूर तक के दोनो ओर तेज आग भडक रही थी। इधर जीव-जन्तुओ का सचार भी रुद्ध था। ऐसे मे हमे वडा आश्चर्य हुआ जव हम सभी मुनि श्री के आह्वान पर उस भयानक मार्ग को सहज मे पार कर गये। हमे अचानक कवि कालिदास का श्लोक याद आया।

'शशाम वृष्ट्यापिविना दवाग्निरासीद्विशेष फलपुष्पवृष्टि ।'

जव राजा दिलीप जैसे ससारी-कामना सहित प्राणियो के प्रभाव से दावाग्नि वृष्टि के विना ही शान्त हो सकती है तव हम तो साक्षात् परम दिगम्बर मुनिश्री के साथ थे। उनके प्रताप से ऐसा होना आश्चर्य की वात नही। ऐसे और भी अनेक प्रसग हैं।

पर्वतीय मार्ग जैसे ठण्डे होते हैं, सूर्योदय के पश्चात् वैसे अधिक गरम भी हो जाते हैं और प्रखर-सूर्यकिरणो के कारण पथिको का चलना कठिन हो जाता है। पर्वतो पर वृक्ष तो होते हैं पर हमारा मार्ग ऐसा था जिसके किनारे वृक्षो का नाम नही। एक ओर ऊँची पर्वत श्रेणिया थी तो दूसरी ओर सैंकडो सैंकडो फुट नीचे खलखलाहट करती नदी का प्रवाह। यद्यपि हमसे कहा गया था कि पहाडी मार्ग पर सर्दी, धूप और चढाई के कारण थकान जल्दी हो जाती है। अत. दिन मे ५ या ६ मील से अधिक न चलें। पर यह भी आश्चर्य रहा कि हमे मुनिराज के साथ कठिन से कठिन और नौकीले पत्थरो व धूप की तपन वाले मार्गों को मीलो की दूरी तक पार करना भी सरल वन गया। हमे थकान व कष्ट का लेश भी अनुभव न हुआ। कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि और भी चल लिया जाय।

(आगे) श्रीनगर तक

'उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
पुरुषस्य चोपविष्टस्य देवता न च सिद्धिदा ॥'

—कार्यों की सिद्धि उद्यम से होती है, चाहनामात्र से नही। अकर्मण्य होकर वैठे पुरुष के कार्यो को देवता भी सिद्ध नही करते।

सभी चले जा रहे थे। पहाडी औहड मार्ग था। ऐसे कठिन मार्ग मे नगे पैरो पद-यात्रा करना जन साधारण के वश की वात नही थी। फलत साथ के कतिपय व्यक्ति जिन्हे जीवन मे विविध वाहनो की सुविधाएँ प्राप्त रही, जो कभी पैदल (इतने) नही चले, यदा-कदा निराश एव हत-प्रभ हो जाते और मार्ग मे वैठ भी जाते। परन्तु जव वे ही व्यक्ति मुनिश्री को चलते देखते सहसा

उद्यम के सिद्धान्त को विचारते। मुनिश्री से ढाढस पाते तो आगे की ओर चल देते। और कहते—मुनिराजो को धन्य है जो जीवन के समस्त क्षण पद-यात्रा मे ही विताते हैं। वस्तुत विचार दृष्टि से देखा जाय तो पद-यात्रा ही सर्वोत्तम और हितकारी यात्रा है। इसमे ईर्या-पथ की शुद्धि, प्रकृति परिचय, स्वावलम्बन एव लोकहित सभी निहित हैं। इसीलिये मुनिगण पद-यात्रा के नियम का पूर्ण निर्वाह करते है।

मुनि श्री १० मई ७० को दुगड्डा से चले और १७ मील दूर 'देवीखाल' जा पहुचे। दिनाक ११ के प्रात 'गुमखाल' होते हुए १७ मील का मार्ग तय कर 'सतपुली' पहुँचे। यहा डाक वगले मे ठहरने का प्रवन्ध हुआ। मुनि श्री का यहाँ पहुँचना था कि डाक वँगले मे भीड एकत्रित होने लगी। साथ के श्रावको ने उसे समझाया कि—मुनि श्री पर्याप्त लम्वा मार्ग पैदल तय करके आये हुए है अत इस समय आप लोग विश्राम लेने दीजिये। दूसरे, अव सायकाल हो रही है, वे रात्रि मे मौन रहते हैं आदि। वडी कठिनाई से वे राजी हुए और लौट गये।

ऊपर वतलाये सभी स्थान पहाडी और साधारण जनसख्या वाले हैं। चारो ओर ऊँचे पर्वत, हरियाली, नदी एव झरनो का साम्राज्य है। ऐसा लगता है कि यहाँ के विविध दृश्यो को देखता ही रहे। पर—वश की वात नही, आवश्यकतानुसार सभी काम ही तो करने होते हैं। सघ को भी आगे का कार्यक्रम पूरा करना था अत वह इन दृश्यो का आनन्द मात्र लेते हुए आगे वढता रहा और 'सतपुली' तक जा पहुँचा। हाँ, यहाँ एक वात यह लिखनी भी आवश्यक है कि जहाँ प्रकृति ने इस प्रदेश को शान्त एव सुहावना वनाया है वहाँ गरीवी का निर्माण भी किया है। यहाँ दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति लोग वडी कठिनाई से कर पाते हैं। कुछ ही ऐसे होगे जो सम्पन्न होते हो। हमने देखा-प्रात काल मे स्कूल वस्ता उठाकर जाने वाले छात्र अपने कधो पर वोझे की गठरिया लादे चले जा रहे हैं। जव उनसे पूँछा, उन्होने वतलाया—हमारी परिस्थिति ऐसी नही कि घर मे एक दिन आराम से वैठकर गुजारा कर सकें। **'रोज कुआँ खोदना और रोज पानी पीना'** ही हमारा दैनिक नियमित कर्तव्य वन गया है। अत स्कूल जाते समय हम कुछ सामान ले जाते हैं जिसे हमारे अभिभावक वेचते हैं और इसी से हमारी आजीविका होती है।

सतपुली मे जव हम रात्रि को विश्राम कर रहे थे हमारे कानो मे लोगों के यद्वा-तद्वा वकने की आवाजें आने लगी। हमने सोचा इधर शायद कोई 'पागलखाना' हो। परन्तु देर तक कोलाहल होने के वाद हमने सुना कि कुछ लोग एकत्रित होकर उन पागल बने हुए लोगो के उपचार का उपक्रम करने मे

व्यस्त हैं। हमे विदित हुआ कि उन लोगो ने शराब पी रखी थी। हमे प० आशाधर जी का वाक्य याद हो आया 'मद्याद्यदूना विपद्'—अर्थात् मद्यपान करने से यदुवशियो पर विपद् के बादल छा गये और उनमे से अधिकाश नाश को प्राप्त हुए। हमने सोचा—इनमे शिक्षा का अभाव है और गरीबी भी है। जो ये कमाते हैं उसका अधिकाश भाग इस व्यसन मे खो देते हैं। यदि हमारी सरकार इस दिशा मे प्रयत्न करे तब भी बहुत कुछ सुधार हो सकता है और इनका जीवन सुखी हो सकता है। ऐसे अप्रिय प्रसग इधर हमे अन्य अनेको स्थानो पर देखने को मिले। अनेको स्थानो पर मुनि श्री ने लोगो का ध्यान इधर खीचा और सैकडो व्यक्तियो ने मद्यपान त्याग की प्रतिज्ञाएँ भी ली।

दिनाक १२ मई को मुनि श्री ने १३ मील की पद यात्रा की और 'पाटी-सेन' होते हुए 'पीपलीपानी' मे रात्रि विश्राम किया। यहाँ एक स्कूल मे ठहरे। स्कूल के क्षात्रो व अध्यापको एव ग्रामीणो ने मुनि श्री के श्रद्धा भक्तिपूर्वक दर्शन किये सघ के श्रावको की ठहरने की व्यवस्था की। मुनि श्री ने सभी को 'मानव-कर्तव्य' और धर्म का स्वरूप समझाया। वे बडे प्रभावित हुए। लोगो का कहना था कि इधर ऐसे साधु उनके समय मे नही आये जो इतने लोको-पकारी और परीषह विजयी हो। सघ रात्रि विश्राम के बाद अगले दिन 'पैडुल' होते हुए 'बुआखाल' के जगल मे पहुँचा। यह स्थान इतना मनोरम लगा कि सघ इससे आगे बढने को राजी नहीं हुआ। मुनि श्री की तो बात ही क्या? वे तो बुआखाल' हैं ही। वे भला, क्यो नगर को पसन्द करते ? फलत यही निर्णय रहा कि इसी जगल मे विश्राम किया जाय। बस, क्या था, सबने सडक के किनारे जगल मे ही रात गुजारी।

'बुआखाल' की ऊँचाई ६००० फुट है। यहाँ मई के महीने मे भी काफी ठण्ड थी। यहाँ ठहरने से सघ के लोगो मे स्वशिविर मे स्वावलम्बन की जागृति हुई। यहाँ कोई मकान नही, झोपडी नही, पास मे पानी और ग्राम भी नही। भाव ऐसा कि श्रावको को पानी भी दूर से लाना पडा। ठीक ही है—

'नालसा प्राप्नुवन्त्यर्थं न क्लीवा न च मायिन ।'

—अर्थात् आलसी, नपुसक और मायावी मनुष्य अर्थ (आवश्यकतापूर्ति) को नहीं पाते। सभी विविध उद्यमो मे लग गये। और हँसते-हँसते विश्राम मे मग्न हो गये। प्रात उठकर देखा तो सब मे उत्साह था। सब कह रहे थे ऐसा आनन्द जीवन मे नही मिला। धन्य है वनवासी जन, जिन्हे ऐसी स्वच्छ वायु और एकान्त स्थान की उपलब्धि रहती है। दिनाक १४ मई को सघ पौडी पहुँचा।

पौडी जिला है और यहाँ पर्वतीय स्थान के अनुरूप अच्छी बस्ती भी है।

यहाँ जिले के उच्च अधिकारी और सभी महकमो से सम्बन्धित लोगो की पर्याप्त सख्या है। यहाँ के डाकबँगले मे ठहरने का प्रबन्ध था। यहाँ के अधिकारी कर्मचारी और आबाल-वृद्ध सभी ने मुनि श्री के चरणो मे श्रद्धा सुमन चढाये। लोगो को आश्चर्य हो रहा था कि वे आज क्या देख रहे हैं। एक ने तो कहा कि हमारे नगर में साक्षात् भगवान ही आ गये हैं। मुनिश्री ने यहाँ आगन्तुको को धर्मोपदेश दिया और वीतरागता का स्वरूप समझाया। उन्होने कहा

'नग्न पश्यतु वादिनो जगदिद जैनेन्द्रमुद्राकितम्।'

—अर्थात् यह समस्त विश्व ही जिनेन्द्र की मुद्रा से अकित-स्वाभाविक नग्न रूप ही है। कोई पदार्थ पर-पदार्थ के गुण और द्रव्यरूप नही होता। जीव अपने रूप मे है और पुद्गल (जड) अपने रूप मे है। जब तक इन्हे पहिचाना नही जाता मोह और अज्ञानता के कारण एक माना जाता है तब तक मुक्ति प्राप्त नही होती। यदि मुक्ति—दुनिया के दुखो से छुटकारा पाना है तो प्रत्येक पदार्थ के स्वत स्वाभाविक (एक मात्र) रूप को देखना पडेगा। आत्मा-परमात्मा तभी बनता है जब अपने स्वाभाविक (वीतराग) धर्म को पहिचानता है, आदि।

यहाँ धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। मुनि श्री रात्रि विश्राम कर प्रात सघ सहित श्री नगर की ओर विहार कर गये। श्रीनगर मे मुनिश्री का भव्य स्वागत हुआ कई प्रवचन हुए। यहाँ ६ दिन ठहरे और आगे की यात्रा की व्यवस्था होने पर दिनाक २१ मई ७० को बद्रीनाथ की ओर चल दिये। श्री नगर मे मुनि श्री ने चातुर्मास किया। यहाँ का वृत्तान्त इसी पुस्तक मे स्वतत्र प्रकरण के रूप मे दिया गया है। अत यहाँ नही लिखा जा रहा।

बद्रीविशाल की ओर

भट्टीसेरा

यह स्थान श्रीनगर से १० मील दूर तक साधारण ग्राम के रूप मे पहाडी नदी (गाड) के किनारे बसा हुआ है। यहाँ पुरातन की स्मृति दिलाने वाली 'काली कमली' वालो की धर्मशाला है। मुनि श्री यही २६-४-७० को ठहरे। आहार के अनन्तर मुनि श्री नदी की ओर चले गये और वही सामायिक की सामायिक के बाद वहाँ के ग्रामीणकृषको, बालको और वृद्ध पुरुषो व महिलाओ ने मुनि श्री के दर्शन किये और मुनि श्री ने कृषको के पहाडी जीवन की झाँकी देखी। मुनि श्री ने उस समय प्रजापति तीर्थंकर वृषभदेव के काल और उनकी देन का स्मरण किया और उनके मुख से निकल पडा—

'प्रजापतिर्यं प्रथमं जिजीविषु शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजा।'

अर्थात् जिन प्रथम प्रजापति तीर्थंकर वृषभदेव ने जीने की इच्छा वाली प्रजा को कृषि आदि कर्मों का उपदेश दिया (उनकी जय हो)।

विश्व के समस्त देश कृषि के सहारे ही जीते हैं। आज का भौतिक जगत भले ही कृषको से दूर, विविध साज-सज्जा से युक्त सम्पन्न नगरो मे रहता है। पर सबका जीवन, ठाठ-वाट, आमोद-प्रमोद किसानो और ग्रामो पर ही निर्भर है। यदि हमने इनको विसरा दिया तो हम भी मार्ग से विसरा दिये जायेंगे। हमने देखा—इन किसानो के द्वारा रक्षित शाक-सब्ज़ी और धान्योंसे हरे-भरे खेत पथिको के मन को मोह लेते हैं। पहाडी-स्थल की कडकडाती धूप मे हल चलाते हुए किसान को जव मुनिश्री ने देखा तो वे एक कवि का पद्य पढने लगे—

'वरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा।
है चल रहा सन-सन पवन, तन से पसीना ढल रहा॥
तो भी कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे।
किस लोभ से इस आँच मे वे निज शरीर जला रहे॥

इतना होने पर भी कृषक मे सरलता इतनी कि जिसका वर्णन करना कठिन है। उसके खेत पर पहुँचा कर उसकी चीज खरीदने का प्रयत्न उसके लिये अपमान है। वह तो आगन्तुक का भक्ति-भाव से सन्मान करता है, उसे देखकर वुलाता है, पास विठाता है, हर्षित होता और नयनो मे स्नेह भर लेता है वह मानवता का व्यवहार करता है। ऐसे स्थान पर जाने को मन होता है। ठीक ही है, जहाँ उक्त प्रकार का वातावरण न हो वहाँ पर बुद्धिमानो को जाना भी नही चाहिये। कहा भी है—

'आवत ही हरषै नहीं, नयनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहा न जाइये, कँचन वरसै मेह॥

मुनि श्री ने यहाँ एक कृषक से उसकी असुविधाओ और कठिनाइयो को सुना। लगभग ७०-७२ वर्ष का एक किसान कहते सुना गया—'मेरी इतनी वडी उम्र मे मैंने कभी किसी साधु को इतनी कृपा-वार्ता करते नही सुना—देखा। आये तो अनेको, पर अपने-अपने मे लीन। कई ठाठ-वाठ मे भी आये और कई कोरे पथिकरूप मे भी आये। इन मुनि जी ने तो हमारे निकट पधार कर हमे धन्य कर दिया। इनकी जय हो।'—

रुद्रप्रयाग

रुद्रप्रयाग स्याग भट्टीसेरा से १४ मील दूर अलकनन्दा-मन्दाकिनी नदियो के सगम पर वसा हुआ है। मुनि श्री यहाँ २२ मई को आ पहुँचे। यहाँ

बद्रीनाथ मदिर-समिति द्वारा निर्मापित सुन्दर-भवन है। इसी मे ठहरने की व्यवस्था हुई। मुनि श्री का लोगो ने स्वागत किया। मध्यान्ह की सामायिक के पश्चात् मुनि श्री के समीप लोगो का आवागमन प्रारम्भ हो गया। धार्मिक चर्चाएँ हुई। मुनि श्री ने भी लोगो से स्थानीय लोगो की सुख-सुविधाओ तथा पर्वतीय सुषमा और निकटवर्ती स्थानो की महत्ता के सबध मे जानकारी प्राप्त की। यहाँ से एक मार्ग केदारनाथ की ओर चला जाता है। जिस दिन हम पहुँचे, यहाँ काफी सख्या मे यात्रियो का आवागमन रहा। फिर भी भवन के व्यवस्थापको ने सघ की सुख-सुविधाओ का पूरा ध्यान रखा। रात्रि विताकर अगले दिन गौचर के लिये प्रस्थान किया।

गौचर

आज २३ मई थी। मुनि श्री रुद्र प्रयाग से २२ कि० मी० का मार्ग तय कर गौचर पहुँचे। यद्यपि मार्ग मे नागरासू डाक बँगले पर ठहरने का विचार था। परन्तु वहाँ व्यवस्था की अनुकूलता न देख आगे बढना ही उचित समझा। आज प्रात से ही पानी के आसार थे। मार्ग मे वर्षा ने अपना चमत्कार भी दिखा दिया। शीतल वायु जल-बिन्दुओ से मिश्रित हो और भी शीतल हो गई थी। ऊपर विद्युत् चमक-चमक कर अपना चमत्कार दिखला रही थी। पर्वतीय पक्षीगण और यदा-कदा मयूर भी अपनी मधुर ध्वनियो से पथिको का मन मोह रहे थे। हम काँप तो रहे थे पर थे फिर भी प्रसन्न। हमे आगे चलने की उत्सुकता जो थी। उस समय के दृश्य और प्रसगो को देखकर सहसा निम्न स्मृति ताजा हो आई—

'ज णच्चे विज्जू मेहंधारा पफुल्ला णीपा सद्दे मोरा।
वा अंता मन्दा सीआ कपता गाआ सता[1] णा आ।।'—

विजली नाच रही है, मेघ धारा बरस रही है, नीप पुष्प फूले हैं, मोर शब्द कर रहे हैं, मद और शीतल वायु वह रही है, शरीर काँप रहा है ऐसे मे सत हमारे निकट नही हैं। स्मरण रहे यहाँ मार्ग मे सघ के लोग भी अधिकाश रूप मे मुनि श्री से दूर रह गये थे। कुछ आगे तो कुछ पीछे। आखिर उन्हे ऐसी भीषण सर्दी से अपना बचाव जो करना था। इस प्रकार ऊपर के गाथा अनुसार मुनि श्री के प्रति सबको चिंतित रहना उचित ही था। क्योकि सघ के और मुनि श्री के बीच पर्याप्त अन्तराल आ चुका था। अस्तु, जो भी हो। सभी साथी और मुनि श्री मार्ग तय कर गोचर पहुँचे। यहाँ कालीकमली वालो की धर्मशाला की अवस्था को देखा और अन्य धर्मशालाओ से उसकी तुलना

---

१ कता।

की तो हमे सहसा विचार उठा कि पिता के हृदय मे दो-पुत्रो या पुत्रियो के मध्य भेद-भाव कैसा ? अन्य स्थानो की धर्मशालाएँ यहाँ से श्रेष्ठ रूप मे हैं और वे भी इसी सस्थान की हैं। जैसे-तैसे वहाँ रात गुजारनी पडी और कोई चारा भी न था।

गौचर स्थान पर्वतीय मैदानी क्षेत्र है। पर्वतीय यात्रा मे जैसी विस्तृत समतल भूमि और मैदान यहाँ देखने को मिले वैसे अब तक दुर्लभ रहे। यहाँ हवाई अड्डा भी है, बाजार भी दूर तक लम्बाई मे चला गया है। राजपथ भी काफी चौडा है। सायकाल मे गाँधी आश्रम के प्रागण मे मुनि श्री का प्रवचन हुआ। श्री नारायणदत्त चमोला, जो गाँधी आश्रम के प्रबन्धक हैं, ने मुनि श्री के सन्मान मे एक वक्तव्य दिया। प्रासगिक अन्य परिचय-शब्दो एव मगलाचरण के अनन्तर मुनि श्री ने कहा—

'एको मे शाश्वतश्चात्मा ज्ञानदर्शनलक्षण ।
शेषा वहिर्भवाभावा , सर्वे सयोगलक्षणा. ॥'—

केवल मेरा एकाकी आत्मा शाश्वत है और वह ज्ञान-दर्शन लक्षणपूर्ण है। आत्मा के अतिरिक्त शेष पदार्थ वाहरी हैं और सयोग से मिले हुए हैं।' सयोग मे वियोग है और वियोग मे दुःख। अत सयोगी पदार्थों—शरीरादि से ममत्व-त्याग ही श्रेयस्कर है। उन्होने कहा—मनुष्य को इन्द्रियाँ मिली हुई हैं और ये इन्द्रियाँ पशु पक्षियो के भी होती हैं। परन्तु मनुष्य विवेक सम्पन्न होने से इन इन्द्रियो को धर्म कार्यों मे लगा सकता है। जीवन को उपयोगी बनाने के लिये इन्द्रिय-विजय भी परमावश्यक है। इन्द्रिय-विजय से आत्म-शान्ति प्राप्त होती है। शाश्वत सुख और शान्ति आत्मा मे है जिसे पहिचान कर यह जीव परमात्मा तक बन सकता है। इन्द्रिय-सुख भोगो मे शान्ति नही। इन्द्रियो के अनुकूल विषयो के सेवन से भौतिक-तात्कालिक शान्ति तो मालूम देती है पर वह स्थायी और आत्मा का स्वभाव न होने से अशान्ति कारक ही है। अत शरीरादि के मोह को छोडकर लोकोपकार मे रत होते हुए आत्मोद्धार करना चाहिये। शरीरादि की शुद्धिमात्र से कर्म नही धुलते, कर्मों का प्रक्षालन करने, विवेक सपन्न होने और तदनुसार प्रवृत्ति करने पर ही कर्मों से छुटकारा हो सकता है। इस पर प्रकाश डालते हुए मुनि श्री ने कहा—

'आत्मानदी सयम तोयपूर्णा, सत्यावहाशीलतटा दयोर्मि ।
तत्रावगाह कुरु पाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥'

—महाभारत

हे पाण्डुपुत्र, युधिष्ठिर ! आत्मारूपी नदी सयमरूपी जल से पूर्ण है,

सत्यशील उसके तट हैं, दयारूपी लहरें है, ऐसी नदी मे स्नान कर। इससे अन्तरात्मा की शुद्धि होती है। जल मे स्नानमात्र से अन्तरात्मा की शुद्धि नहीं होती' 'चर्म धोने से कर्म नही घुलते। मुनि श्री ने इस प्रसग मे तूंबीफल के स्नान कराने का रोचक और प्रभावक दृष्टान्त भी दिया। जिसका भाव था कि जैसे तूवीफल को लाखो वार सावुन से धोया जाने पर भी वह कडवाहट को नही छोडता वैसे ही हजारो लाखो वार स्नान मे शरीर पवित्र नही होता—वह स्वाभाविक अशुद्ध ही रहता है। जव शरीर शुद्ध नही हो सकता तव आत्म शुद्धि की तो बात ही क्या ? आत्म-शुद्धि के लिये सदाचार, सत्य, शील पालना होगा, इन्द्रिय विजय करना होगा, आदि। सभा के वाद मुनि श्री ने गाघी आश्रम को देखा।

कर्ण प्रयाग

गोचर से विहार कर मुनि श्री दिनाक २४ मई को कर्णप्रयाग पहुँचे। कर्णप्रयाग अलकनन्दा और पुण्डीर नदियो का सगम स्थान है। यह स्थान २६०० फुट की ऊँचाई पर है। छोटा सा वाजार भी है। यहाँ सरकार द्वारा निर्मापित यात्री विश्राम-गृह मे ठहरे। गृह मे सभी सुविधाएँ जो यात्रियो को मिलनी चाहिये—उपलब्ध थी। आहार के वाद मुनि श्री नदी के किनारे चले गये और स्वाभाविक एक गुफा मे उन्होने सामायिक की। तदनन्तर नदी और पर्वत के मध्य मुनि श्री ने प्राकृतिक-छटा का अवलोकन किया। विश्रामगृह मे वापिस पहुचने पर सघ के श्रावक-श्राविकाओ एव स्थानीय दर्शनार्थियो के वीच मुनि श्री ने सक्षिप्त धार्मिक-प्रवचन किया। उन्होने प्रेरणा दी कि जिस प्रकार प्रकृति अपने स्वाभाविक स्वभाव मे रहने से जन-मन मोहक होती है, उसी भाँति यदि हम भी प्रकृति (आत्म स्वभाव) मे रहे तो स्व-पर सुखदायी हो सकते हैं। उन्होने कहा—आप लोगो ने देखा कि किस प्रकार पहाडी नदी का प्रवाह वडे-वडे पत्थरो को सहज ही तोड देता है—उसे वालू भी बना देता है। यदि यह प्राणी उद्यम करे, धार्मिक आचरण मे सावधान रहे तो घोर से घोर दुख समाप्त हो सकते हैं, कर्म वन्धन शिथिल हो सकते है। वे वोले—

'हृद्वर्तिनी त्वयि विभो ! शिथिलीभवति,
जन्तो क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजगममया इव मध्यभाग—
मभ्यागते वन शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥'
—कल्याणमन्दिर स्तोत्र, ८

जैसे वन मे मोर की वोली को सुनकर चन्दन से लिपटे हुए सर्प अपने वन्धन शिथिल कर देते हैं और चन्दन-वृक्ष से नीचे गिर जाते है। उसी प्रकार

भगवन् के गुणो को क्षण मात्र ही हृदय मे धारण करने से कोटि-कोटि भवो के कर्मबन्ध भी शिथिल हो जाते हैं—वे आत्मा को छोड जाते हैं। मुनि श्री ने कहा—आलस से कार्य सपन्न नही होता, उद्यम से ही कार्य होता है—

'तट पर बैठ लहरें गिनने से, नौका पार नहीं होती।
मांझी तुझे चीरनी होगी, तूफानी सागर की छाती॥'—

नन्द प्रयाग

मुनि श्री दिनाक २५ मई के पूर्वान्हि समय मे नन्द प्रयाग जा पहुँचे। यहां अलकनदा और नन्दाकिनी का सगम हुआ है। नगर के बाहर लगभग आधा फर्लांग पर पी० डब्ल्यू डी० का सुन्दर रैस्ट हाउस है। नदी के किनारे का दृश्य अत्यन्त मनोहर है। आगे का मार्ग तय करने की दृष्टि से यहां अधिक ठहरना नहीं हुआ और आहार आदि से निवृत्त हो सभी आगे वढ गये। यद्यपि चलने से पूर्व विचार आया कि नन्द प्रयाग से चमोली तक की लम्वी दूरी प्रात कालीन यात्रा के वाद तय करना कठिन होगी। परन्तु मुनि श्री के साहस ने साथियो को प्रेरणा दी और सभी आगे वढ चले। जैसे ही नन्द-प्रयाग नगर के मध्य भाग मे होकर मुनि श्री ने चमोली की ओर बिहार किया, सडक के दोनो ओर खडे नर-नारियो ने मुनि श्री के चरणो मे अपने मस्तक नत कर दिये। दृश्य वडा ही मनभावना था। नगर मे यह समाचार तो पहिले ही फैल चुका था कि एक श्रमण दिगम्वर मुनि इस पथ को पवित्र करते हुए वद्रीनाथ की ओर वढ रहे हैं। नगरवासियो ने इससे पहिले कभी किन्ही दिगम्वर मुनिराज के दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त नही किया था। वे लोग इनकी नग्नता को देखकर इनकी मन-विजय का चिन्तन करने लगे और आश्चर्यचकित आपस मे चर्चा करने लगे कि इनका मन स्थिरता कैसे पा गया, आदि। जव हमारे कानो मे उनके शब्द पडे तो हमे एक पुरानी वार्ता याद आ गई—

'उत्तर काशी मे निवास करने वाले एक महात्मा से एक विख्यात महात्मा का साक्षात्कार हुआ। उत्तर काशी के महात्मा आँखो पर पट्टी लगाये थे, कानो और नासिका मे निरोधक रुई लगा रखी थी, मुख पर पट्टी। दूसरे महात्मा ने पूछा—आपने ऐसा क्यो कर रखा है? उत्तर काशी के महात्मा ने कहा—मैं चालीस वर्षां से एकान्त मे कुटिया वनाकर रहता हूँ फिर भी पूर्ण एकाग्रता नही मिली। परन्तु आप तो प्रतिदिन जनसमूह मे रहते हैं, प्रवचन करते हैं, आप मन स्थैर्य कैसे रख पाते हैं?'

'मन के मत मत चालिये, मन के मत वहुतेक।
जो मन पर असवार हैं, ते हजार मे एक॥'—

चमोली

यह स्थान समुद्रतट से ३१५० फुट ऊँचा उत्तराखण्ड का एक जिला है। गोपेश्वर जो यहाँ से निकट ही ऊँचाई पर बसा हुआ है; सरकारी भवनो से व्याप्त हो रहा है और वहाँ अन्य निर्माण कार्य भी हो रहा है। अधिकाश आफीसर यही रहने लगे हैं। ऐसा लगता है कि यदि ऐसे ही चलता रहा तो धीरे-धीरे चमोली की महिमा ह्रास को प्राप्त हो जायगी और उसका स्थान गोपेश्वर ले लेगा।

मुनि श्री दि० २५ मई की साय मे चमोली पहुँचे। मुनि श्री की निवास व्यवस्था मे चमोली सार्वजनिक विभाग के एक अधिकारी ने बडा योग दिया। मुनि श्री ने इनके द्वारा व्यवस्थित कमरे मे रात्रि व्यतीत की। शेष श्रावक-श्राविका एव साथियो का प्रबध श्री पुरुषोत्तम बगवाडी एडवोकेट के परिवार ने की। बगवाडी जी इससे पूर्व भी रुद्रप्रयाग मे मुनि श्री के दर्शन कर चुके थे और मुनि श्री से प्रभावित थे। व्यवस्था मे श्री मधुकेश्वर शास्त्री ने भी पूरा सहयोग दिया।

चमोली मे शास्त्री जी से मुनि श्री की पर्याप्त चर्चा-वार्ता हुई। शास्त्री जी आध्र-प्रदेशस्थ विजयनगरम् स्थान के निवासी हैं और अत्यन्त सरल सेवाभावी भी हैं। वे कन्नड खूब जानते हैं और कैलाश-मानसरोवर यात्रा का आनन्द भी ले चुके हैं। चर्चा के मध्य उन्होने अपनी यात्रा के अनुभव सुनाये। कैलाश और मानसरोवर दोनो नाम सुनकर हमारी भावना मे धर्म के प्रति जागृति का भाव आया और वह इसलिए कि कैलाश से आदि तीर्थंकर वृषभदेव का सबध रहा है—उन्होने यहाँ से मुक्ति प्राप्त की है—'कैलाशेवृषभस्य-निवृत्तिर्मही वीरस्य पावापुरे।'—कैलाश का दूसरा नाम 'अष्टापद' भी है उसे भी स्तोत्रो मे मुक्ति स्थान गाया गया है—'अष्टापद आदीश्वर स्वामी।'—

मानसरोवर पर राजहस पक्षियो का रहना और नीर-क्षीर न्याय मे हस-वृत्ति का प्रयोग करना लोकप्रसिद्ध ही है। जब तक हस-वृत्ति न हो, गुण ग्राहकता नही आती। स्तन पर लगाने पर भी जोक रक्त ही पीती है और मिले हुए जल-दुग्ध मे से हस दुग्ध ही पीता है। सज्जन पुरुष हस-वृत्ति होते हैं उनका स्मरण चित्त को आनन्ददायक होता है। आगरे के डॉ० जयकिशन प्रसाद खडेलवाल भी चि० राकेश सहित यहाँ सघ मे सम्मिलित हो गये। वे भी हस-वृत्ति, भद्रप्रकृति विद्वान् हैं और मुनि श्री व जैनधर्म मे पूर्ण श्रद्धालु हैं। रात्रिवास कर सभी अगले दिन प्रात. आगे की ओर बढे।

पीपलकोटी

यद्यपि नन्दप्रयाग-विश्रामगृह से हमे आभास होने लगा था कि हम अब

हिमालय की काफी ऊँचाई पर पहुँचते जा रहे हैं क्योंकि वहाँ से हमे पर्वत की बर्फीली चोटियाँ स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। जब मुनि श्री दिनाक २६ मई को यहाँ पहुचे वे और अधिक स्पष्ट हो चली। यहाँ से मौसम भी अपेक्षाकृत पहिले से अधिक ठण्डा हो चला था। साथ के लोगो ने स्यूटर आदि निकाल लिये और वे कम्वल आदि गर्म वस्त्र भी लेने लगे।

पीपलकोटी मे वद्रीनाथ ट्रस्ट द्वारा निर्मापित धर्मशाला है। यहाँ ठहर कर सवने भोजन पान के उपरान्त विश्राम किया। सभी को विरही नदी का दुग्धवर्ण-जल रह रह कर स्मरण आ रहा था। यहाँ दिल्ली आदि की भाँति गर्म लू का नाम भी नही। मौसम पूर्ण सुहावना और मनमोहक है। यहाँ एक वात नई देखने को मिली। हमने सुन तो रखा था कि कही-कही कुत्तो और वकरो से भी खच्चर व बैलो का काम लिया जाता है पर देखा यही। यहाँ व्यापारी लोग वकरो पर सामान लादकर स्थान से स्थानान्तर ले जाते हैं। एक वकरे पर लगभग ५–६ किलो सामान होता है। सामान के लिये एक विशेष प्रकार की थैली बनाई जाती है जो वकरे की पीठ के दोनो ओर (सामान के कारण) वेलैंस मे सधी रहती है। प्राचीन काल मे जब आवागमन के आधुनिक वाहन नहीं थे तव लोग इसी प्रकार के साधनो का उपयोग करते थे, पहाडो पर तो अव भी यही क्रम है।

यहाँ हमे यह भी विशेष रूप से लिखना उपयुक्त जँच रहा है कि हमारी इस लम्बी यात्रा मे कुछ पदार्थ ऐसे रहे जिनका हमे पहिले से ही पूर्ण प्रवन्ध करने को बाध्य रहना पडा। दैनिक उपयोग मे आने वाले पदार्थों, जैसे कोयला, मिट्टी का तेल, खर्च करते समय हम सभी को वडा सतर्क रहना पडता था—हम सभी आगा-पीछा सोचने को वाध्य रहते थे। एक वार हमारे सघ व्यवस्थापक को किसी साथी ने कह दिया कि पीपलकोटी मे कोयला वहुत मिल जायगा मैं दिला दूंगा। फलत. कोयले का अधिक व्यय कर दिया गया। परन्तु जब यहाँ आकार देखा तो कोयला न मिला और परेशानी दूर करने को अन्य उपाय करने पडे। हमे आश्चर्य इस बात का भी है कि इस रोड पर दिन मे सैकडो वस, ट्रक, कारो आदि का नित्यप्रति सचार होने पर भी पैंट्रोल की व्यवस्था नही है। हमारे वद्रीनाथ जाने के दिन तक यदि किसी को वद्रीनाथ तक का (श्रीनगर से वद्रीनाथ तक) २०० मील का आवागमन सवधी मार्ग तय करना हो तो उसे श्रीनगर से ही प्रवन्ध करके चलना चाहिये। हमें मालूम हुआ कि दिनाक १ जून ७० से पीपलकोटी मे पैंट्रोल टकी की व्यवस्था होने की योजना बन चुकी है। पर यह आश्वासन हमे तो व्यर्थ ही

था। वह तो अच्छा हुआ कि मुनि श्री के चरणो मे हर विभाग के छोटे बडे व्यक्ति आते रहते थे। उनमे अधिकारी भी होते। फलतः उनके द्वारा हमे सहायता मिल जाती और समय पर पूर्ति हो जाती। हम वरावर ऐसी सहायता को आगे-पीछे सधन्यवाद वापिस करते रहे और हमारी यात्रा चलती रही। मुनि श्री ने २७ मई के प्रात' आगे विहार किया।

जोशीमठ से पूर्व

पीपलकोटी मे सघ का विचार था कि अगला पडाव १७ किलोमीटर चलकर हेलँग चट्टी पर डाला जाय। पर स्थान अनुकूल न होने के कारण विचार परिवर्तित करना पडा और सघ आगे वढ चला। पीपलकोटी से मौसम मे पूरा-पूरा परिवर्तन आ जाता है। यहाँ से आगे क्षण मे वादल और क्षण मे वर्षा, क्षण मे धूप और क्षण मे छाँह का साम्राज्य रहता है। हिमालय के इस भाग को 'ऋतुम्भरा तीर्थ' नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। **ऋतुम्भरा का अर्थ है 'ऋतून्' बिभर्तीति ऋतुम्भरा' अर्थात् जो ऋतुओ को धारण करे— जहाँ सभी ऋतुएँ क्षण-क्षण मे अपना रूप वदलें। हमारे देखते-देखते जहाँ धूप थी वहाँ चारो ओर बादल घिर गये और धीमी-धीमी फुहारें पडने लगीं। फलत मुनि श्री एव कतिपय श्रावको को हेलँग से आगे जोशीमठ से लगभग चार मील पूर्व पैनीगाँव के निकटवर्ती** सेलग **स्कूल मे रात्रि व्यतीत करनी पडी।** उक्त स्कूल राजमार्ग के किनारे एक ऊँची पहाडी पर स्थित था जो अचानक दृष्टि मे आ गया था और जहाँ सव मुनि श्री के साथ जा पहुँचे। स्कूल क्या था ? इसे छोटे-छोटे तीन कमरो का मकान कहा जाय तो उपयुक्त ही होगा। स्कूल के अध्यापक श्री करणसिंह आदि व छात्र-छात्राओ ने सवके ठहरने की सुविधाएँ सचित की। इस समय ठण्ड का साम्राज्य था। नवीन रक्त सचार वाले राजू व पप्पू भी ठण्ड मे थर-थर काँप रहे थे। सभी का वस्त्राच्छादित होते भी यही हाल था। हाँ, मुनि श्री अवश्य स्थिर थे, उन्हे शीत-बाधा विचलित न कर सकी। वे धन्य हैं।

थोडी देर मे मुनि श्री की दृष्टि सामने के पर्वतशिखर पर पडी और उन्होने सबको गिरती हुई बर्फ दिखाई। उडती हुई वाष्प बडे सुहावने ढग से श्वेत हिम का रूप धारण कर रही थी। कुछ ही समय मे सायकालीन कालिमा से आच्छादित पर्वतचोटी श्वेत रूप धारण कर गई। यहाँ के लोगो ने वतलाया कि जहाँ हम वैठे हैं : वहाँ सर्दियो मे २½ फुट मोटी वर्फ की तह जम जाती है और उन दिनो स्कूल वन्द रहता है। सभी साथी इस दृश्य को घण्टो ध्यान से देखते देखते रात्रि को निद्रा देवी की गोद मे मग्न हो गये।

श्री बद्रीनाथ धर्म-संस्थान से सम्बन्धित डिमरी पंचायत के सदस्यगण द्वारा समर्पित पत्र के कुछ अश—

तार डिमरी-वद्रीनाथ ॥ यतो धर्मस्ततोजय ॥

श्री बद्रीनाथ-धर्म-सस्थान

वद्रीनाथ, कर्णप्रयाग (जिला चमोली) उत्तराखण्ड

परम श्रद्धेय श्री मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज के करकमलो मे

—सादर समर्पित—

माननीय,

हम श्री वद्रीनाथ मदिर से सबधित डिमरी (दिगम्बरी, द्वि-अम्वरी) पचायत के सदस्यगण आपके इस वर्ष श्री वद्रीधाम पधारने और हमारा मार्ग प्रशस्त करने के लिये आपका हार्दिक स्वागत एव अभिनन्दन करते हैं ।—

'डिमरी शव्द की व्याख्या — डिमरियो को कुछ लोग द्राविड कहते है, कुछ आर्य । कुछ लोग इन्हें दिगम्बरी, द्वि-अम्बरी शव्द का अपभ्रश डिमरी कहते हैं और ऐसा भी कहते हैं कि प्राचीन काल मे श्री वद्रीनाथ और केदारनाथ धामो के पूजक एक ही थे । जो कि क्रमश दिगम्वरी और स्वेताम्वरी कहलाते थे दिगम्बरी बौद्धकाल मे द्वि-अम्बरी और आधुनिक काल मे डिमरी कहलाते हैं। इनके जीवन-मरण के सस्कार यहाँ के लोगो से पृथक् हैं ।'

महेश्वरीदत्त डिमरी, अध्यक्ष
जोशीमठ (चमोली-गढवाल)
२ जून १६७०
जैन सवत् २४६६

हम हैं आपके कृपाकाड्क्षी
सदस्य, श्री बद्रीनाथ धर्म संस्था
श्री बद्रीनाथ—जोशीमठ (हिमालय)

जोशीमठ

अगले दिन २८ मई के प्रातः श्री ला० जैन प्रकाश विकास नगर वालो ने बच्चो से मिष्टान्न वितरण की व्यवस्था कराई और सब लोग मुनिश्री के साथ जोशीमठ की ओर बढ चले। जोशीमठ ६१५० फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ आकर्षक स्थल है। मुनि श्री के यहाँ पहुँचने से पूर्व ही वहाँ से मीलो पूर्व मार्ग मे वहाँ के गणमान्य अनेक महानुभाव मुनि श्री के स्वागतार्थ आ उपस्थित हुए और मुनि श्री का हार्दिक अभिनन्दन किया। यहाँ पी० डब्ल्यू० डी० के विश्राम गृह मे ठहरने की सुव्यवस्थित व्यवस्था हुई।

जोशीमठ इस मार्ग का प्रमुख और प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ दैनिक आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति के लिये एक बाजार भी है। कहते हैं यहाँ पर आद्य-शकराचार्य ने सर्व प्रथम ज्ञान की ज्योति जगाई। यहाँ शकरगुफा के निकट एक अति प्राचीन शहतूत का वृक्ष है जहाँ बैठकर श्रीशकराचार्य ने तपस्या की बतलाते हैं। हम सभी श्रावक मुनि श्री के साथ उक्त स्थान पर गये और वहाँ बैठकर सबने निकट-दूरवर्ती मनोहर दृश्य भी देखो। ज्योतिर्मठ भी देखा। ज्योतिर्मठ शकराचार्य पीठ की सम्पत्ति है ऐसा कहा जाता है। इसमे सुन्दर सा उद्यान है और उद्यान मे आडू, खुमानी, सेब और अखरोट आदि के विविध वृक्ष लगे हुए हैं। ज्योतिर्मठ के तत्कालीन रक्षक ने मुनि श्री का अभिनन्दन किया और मठ के विभिन्न भागो को दिखाते हुए उनका परिचय दिया। ज्योतिर्मठ एकान्त और ध्यान अध्ययन के उपयुक्त स्थान है—यदि कोई यहाँ बैठकर साधना करे तो।

यहाँ के सार्वजनिक प्रवचन मे मुनि श्री ने हिमालय की सुषमा का वर्णन करते हुए जनता एव सरकार का ध्यान इस प्रदेश के उत्थान की ओर खीचा। यहाँ की जनता को उन्होने कहा कि वह वीतराग राम और महासती सीता के चरित्र का अनुसरण करे। राम जब अयोध्या छोडकर वन को गये वे धर्म को साथ ले गये और इसलिये वे कठोर दुखो को भी सुख रूप परिवर्तित करने मे समर्थ हुए। उन्होने कहा—राम सबके थे और सब राम के थे। राम के व्यावहारिक आदर्शों के साथ हमे राम के आध्यात्मिक भाव को भी समझना चाहिये। राम शब्द की व्युत्पत्ति 'रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति राम' है। इसका फलितार्थ आत्मा होता है। अत हमे आत्मा के गुणो का चिन्तवन कर उनमे लीन होने को उद्यमी होना चाहिये। जब हम आत्म-निरीक्षण करेंगे तभी हमारा कल्याण हो सकेगा। उन्होने कहा ससार बडा विचित्र है। जब लोगों के स्वार्थ परस्पर मे टकराते हैं तब सघर्ष होता है और तभी

आपदाएँ आती है। यदि लोग स्वार्थ बुद्धि को छोडकर परमार्थ की ओर झुक जायें—परस्पर मे सहयोग करें तो कल्याण निश्चित है। यद्यपि शास्त्रो मे स्वार्थ-सिद्धि का उल्लेख भी मिलता है, और लोगो को उसका उपदेश भी दिया गया है परन्तु वह स्वार्थ-सिद्धि आत्मगुणो की प्रधानता को लिये हुए है बाहरी व्यावहारिक भौतिक पर-पदार्थों के सग्रह से उसका तात्पर्य नही। आत्म-हित की प्रथम भावना का उल्लेख करते हुए मुनि श्री ने कहा—

'आद-हिदं कादव्वं जदि सक्कइ परहिद च कादव्वं।
आदहिद पद-हिदादो आद-हिद सुट्ठ कादव्व ॥'

—पहिले आत्महित करना चाहिये और यदि हो सके तो पर-हित भी करना चाहिये। आत्म-हित और पर-हित दोनो मे पहिले आत्महित करना श्रेष्ठ है। जिसने ज्ञानादि आत्मगुणो का विकास कर लिया है, वही पर के ज्ञानादि मे साधन हो सकता है। राम ने पहिले आत्मबल को विकसित किया और इसी से वे राम कहलाये। उन्होने धर्मपालन के लिये भरे-पूरे राज्य का त्याग किया। राम ने अन्तिम दिनो मे दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण की। वे 'जिन' बनने की ओर अग्रसर हुए। वे कहा करते थे—

'नाहं रामो न मे वांछा भावेषु न च मे मन.।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनोयथा ॥'
—योग वाशिष्ठ

—मैं राम (भौतिक शरीर धारी) नही हूँ, सासारिक भावों (पदार्थों) मे मेरा मन नही है। मैं तो केवल शान्ति मे स्थित होना चाहता हूँ जैसी शान्ति मे जिन भगवान स्थित हैं।

'जिन' का वर्णन किन शब्दो मे किया जाय? जीतने वाले को 'जिन' कहा जाता है अर्थात् 'जयतीति जिन'। जब अनादि कर्ममलमलीमस यह आत्मा अपने को शुद्ध कर लेता है—कर्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर लेता है, 'जिन' कहलाता है। राम ने भी यही किया और जितेन्द्रिय-दीक्षा द्वारा तपस्या करके कर्ममल को नष्ट किया। वे मांगीतुगी पर्वत से निर्वाण प्राप्त कर गये। जीवन मे भी उनके आदर्श 'जिन' भगवान ही रहे। मुनि श्री ने सभा मे आगन्तुक व्यक्तियो को कल्याणात्मक आशीर्वाद दिया।

इस सभा मे श्री इन्दुभूषण उपाध्याय, श्री रामेश्वरदयाल बीझवाल आदि विशिष्ट व्यक्तियो ने मुनि श्री का स्वागत किया। सभा का समापन श्री शकरसिंह शाह के धन्यवाद भाषण से हुआ।

यद्यपि आगामी दिन ३० मई को आगे विहार का कार्यक्रम था, तथापि यहाँ के इण्टर कालिज के प्रधानाचार्य तथा अध्यापको की प्रार्थना को मुनि श्री टाल न सके और उन्हे विहार के पूर्व कुछ समय कालिज मे प्रवचन के लिये देना पडा। निश्चित समय पर कालिज के अधिकारियो, व्यवस्थापको व छात्रो ने मुनि श्री का कालिज मे स्वागत किया। आगरा के डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल ने दिगम्बरत्व के विषय मे प्रकाश डालते हुए मुनि श्री की चर्या पर प्रकाश डाला। कालिज के प्रधानाचार्य श्री गोपालराम वहुगुणा ने साधु-महत्ता बतलाते हुए मुनि श्री का स्वागत किया। मुनि श्री ने अध्यापको और छात्रो के कर्त्तव्यो पर प्रकाश डालते हुए उन्हे आशीर्वाद दिया। उन्होने कहा पर्वतीय क्षेत्रो के छात्र और अध्यापको को देखकर आज भी प्राचीन शिक्षा पद्धति की स्मृति नूतन हो जाती है। एक समय था कि जब शिक्षा मे भौतिकता से दूर-सर्वथा सादगी का चलन था। तब विद्यार्थी धर्मनिष्ठ और देशभक्त होते थे। उनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि सभी भारतीय परम्परा के अनुरूप थे। यद्यपि आज शहरो और बडे-बडे नगरो मे शिक्षा मे भी भौतिकता घर करती जा रही है जिसका परिणाम तोड-फोड और मार-पीट के रूप मे यदा-कदा, जहाँ कही प्रकट होता दृष्टिगोचर होता है। तथापि हमे सन्तोष है कि इस पर्वतीय प्रदेश मे आज भी बहुत कुछ सादगी और प्राचीन सस्कृति की झलक विद्यमान है। हमे यहाँ आकर और कालिज का वातावरण देखकर परम सन्तोष है, आदि।

मुनि श्री का ध्यान

दिनाक २९ मई ७० को आहार के बाद मुनि श्री ने आगे की ओर विहार किया और थोडी ही देर मे ऊँचे-ऊँचे पहाड (पगडडी द्वारा) पार कर, जोशी-मठ से मीलो दूर ताया पुल से आगे जा पहुँचे। सामायिक का समय आ पहुँचा और वे सडक से सैकडो फुट नीचे नदी की ओर उतर गये। सघ के श्रावको को आश्चर्य था। मुनि श्री अल्पाहारी और एकाशन-पान नियम मे बँधे होने पर भी कितने साहस का परिचय देते चले आ रहे है। फिर ऊबड-खाबड प्रदेश मे मीलो लम्बी यात्रा भी तो हँसी खेल नही है। क्या था? मुनि श्री ने नदी किनारे एक स्थान देखा और घण्टो सामायिक मे मग्न हो गये। वे शरीर से तो अडिग दिख ही रहे थे उनका मन भी स्थिर था। ठीक ही है— मुनिचर्या बडी कठिन है और उनकी ध्यान विधि भी अनुकरणीय है। भरत के भ्राता बाहुबली स्वामी के विषय मे प्रसिद्ध ही है कि उन्होने ऐसी घोर तपस्या की कि शरीर पर बेलें चढ गईं और दीमको ने बाँबियाँ तक बना

ली। मुनि-ध्यान का चित्रण करते हुए पडित दौलतराम जी ने ठीक ही लिखा है—

'तिन सुथिर मुद्रा देख मृगगण, उपल खाज खुजावते।'

ध्यान पूर्ण कर मुनि श्री उठे और उन्होने आगे चलने का कार्य क्रम बनाया। सभी लोग मुनि श्री के साथ-साथ धर्म-चर्चा करते पाण्डुकेश्वर, लामबगड होते हुए शाम तक जोशीमठ से कई मील दूर हनुमान चट्टी जा पहुँचे।

हनुमान चट्टी

हनुमान चट्टी की रात श्रावको को बडी ठण्डी लगी। यहाँ ठहरने को जो स्थान मिला वह जीवन मे याद रहेगा। और यह भी याद रहेगा कि किस प्रकार भारतीय जन अनायास आये हुए अतिथि को सुविधाएँ जुटाने मे तत्पर रहते हैं। जब सघ को हनुमान चट्टी में आया देखा तब एक दुकानदार ने अपनी दुकान के नीचे का भाग तुरन्त सघ के उपयोग को खोल दिया। इसके बदले मे उसने हमसे कोई चार्ज नही किया। मुनि श्री का क्या कहना ?

'सन्त चरण जहँ-जहँ धरें, तहँ-तहँ पावन होय।'

सम्भवत हनुमान चट्टी के पुलिस अधिकारी भी सन्त की राह देख रहे थे। वे सोचते रहे होगे कि कब कोई मुनि उनके स्थान को पवित्र करें, कब उनकी पुलिस चौकी, साधु चौकी का रूप धारण करे ? उन्होने देखते-देखते बात की बात मे चौकी मे मुनि श्री के विश्राम को स्थान बना दिया और स्वय अन्यत्र रहकर भी प्रसन्न रहे।

यद्यपि श्रमण दिगम्बर मुनि-मार्ग बडा कठिन है। वह आकाक्षाओ से रहित प्रशस्त मार्ग है। मुनिराज के तिल-तुप मात्र परिग्रह का भी सर्वथा त्याग है। उनकी चर्या हर ऋतु मे परीषह जय के रूप मे होती है। घोर शीत में भी वे धैर्य रूपी कम्बल को ओढते हैं और चतुष्पथ मे रहने के अभ्यासी होते हैं—

'इह श्रमणा धृतिकम्बलावृता शिशिरनिशाम्।
तुषारविषया गमयन्ति चतु. पथेस्थिता.॥'

—योगभक्ति ७

तथापि मुनि श्री उन लोगो की भक्ति के अनुसार उनकी विनती को टाल न सके और वहाँ विश्राम के लिये ठहर गये।

वास्तव मे पुलिस का कार्य जनता की सेवा है। भारतीय पुलिस मे अब भी धर्म और वात्सल्य के अकुर दिखलाई दे जाते हैं। मार्ग मे एक स्थान

पर तो पुलिस के सिपाहियो ने सघ के श्रावको को एक पहाडी भाजी भी भेंट की और उसके बनाने की विधि भी बतलाई। वे मुनि श्री के चरणो मे श्रद्धा-पूर्वक नत हुए। मार्ग मे जब हम चलते, मिलिट्री वाले अपनी गाडियाँ खडी कर देते। शायद वे समझते कि हमारी गाडी कही खराब हो गई है और इस लिये हम पैदल चल रहे हैं। वे कहते—आप लोग हमारी गाडी मे बैठिये, हम आपको अभीष्ट स्थान पर छोड आयेंगे। पर, जब उन्हे ज्ञात होता कि हम एक ऐसे महामुनि के साथ चल रहे हैं, जिनका जीवन व्रत पद-यात्रा और निष्परिग्रहवाद है तो वे मुनिराज के चरणो मे झुक जाते और कहते—आज हमारा जीवन धन्य हुआ जो ऐसे महात्मा के दर्शन किये। वे कहते हमारा जीवन धन्य है जो हमे मुनियो, साधु-सन्तो और महात्माओ के देश—भारत देश की रक्षा हेतु सजग रहने का सौभाग्य मिला है। हम इसकी सुरक्षा मे कुछ उठा न रखेंगे। देश की रक्षा मे साधु-सन्त रक्षा और साधु-सन्त की सेवा मे देश सेवा निहित है।

हनुमान चट्टी मे पुलिस वालो ने एक ड्रम भी रख छोडा है। वे इसमे गरम पानी का प्रबन्ध रखते हैं, जो सार्वजनिक रूप मे यात्रियो के उपयोग मे आता है। रात्रि-विश्राम के बाद सघ दिनाक ३० जून ७० के प्रात. बद्री-विशाल की ओर बढा।

दिगम्बरदर्शनधाम श्री बद्री-विशाल

जैसे-जैसे आगे बढते सभी के हृदयो मे उल्लास उमडा पडता। सभी को गन्तव्य स्थान पर पहुँचने मे प्रसन्नता थी। जैसे प्रात के उडे पक्षी साय मे नीडो की ओर तीव्रगति से आते हैं, ठीक वैसे ही सघ के लोग भी इष्ट स्थान को निकट पाकर अपने पग तीव्रगति से बढाने लगे। पर तीव्रगति मे दत्तचित्त होते हुए भी सबने मार्ग के सुहावने दृश्यो को अपनी आखो से ओझल नहीं होने दिया। हमने देखा, सामने प्रात कालीन सूर्य की धूप ने सुदूर एव निकट मे जमे हुए हिम को रजत रूप प्रदान कर दिया है। पर्वत की जो चोटियाँ कुछ काल पूर्व अस्पष्ट सी थी वे अब धवलगिरि के रूप मे रजतवत् चमचमा रही हैं। सम्भवत उत्तर दिशा को कुवेर दिशा नाम देने का एक कारण यह भी हो कि यहाँ इस प्रकार की चाँदी का विशाल भण्डार है। हिमालय, रजताद्रि, हिमाचल, हिमगिरि सब पर्यायवाची शब्द हैं।

ऊँचे पर्वत-शिखरो से बहती हुई बरफ की तरल धाराएँ सहसा ही पथिको का मन मोह लेती और उन्हे प्रकृति के विविध रूपों के विचार को प्रेरित करती। ऐसे मे लेखक से भी न रह गया और वह श्री जयशकर प्रसाद के निम्न पद्य को गुनगुनाने लगा—

'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनो से देख रहा था प्रलय-प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड या चेतन ॥'

—कामायनी, चिन्ता—१

ऐसे मनोरम दृश्य ने साथियो को आश्वस्त भी किया। सघ के सदस्य, जिन्हे कोटद्वार से अब तक दूध के दर्शन दुर्लभ रहे हर्ष से झूम उठे। एक ने तो स्पष्ट ही घोषणा कर दी—अब दूध की कमी नही अखरेगी। देखो, सामने पहाड से दूध की नदी उतरती चली आ रही है—इसे पियो और इसमे स्नान भी करो। वस्तुत यह सब दूध नही, ऊपर से पिघली हुई बरफ का प्रवाह था, जो रजत वर्ण मे चमक कर दूध की भ्रान्ति उत्पन्न कर रहा था।

सभी चले जा रहे थे कि एक साथी हर्ष से झूम उठे। उन्हे यह जानकर बडे गर्व का अनुभव हुआ कि वे अब अलकनन्दा के उद्गम स्थान पर पहुँच चुके हैं। पर, जब ध्यान से देखा तो विदित हुआ कि वे भ्रम मे हैं। वास्तव मे यहाँ बरफ की एक मोटी तह थी जो दूर तक अलकनन्दा के जल को ढके हुए थी। और जिससे अलकनन्दा का पानी दृष्टि मे नही आ पा रहा था। यह परत इतनी मोटी थी कि इसके ऊपर से भारी-भारी वाहन भी सरलता से गुज़र सकते थे।

बद्री विशाल पहुँचते ही सघ के ठहरने के स्थान की व्यवस्था श्री जितेन्द्र कुमार, श्री सोमनाथ सहारनपुर और साथियो ने (जो पहिले ही वहाँ पहुँच चुके थे) यथोचित रूप मे कर रखी थी। इस व्यवस्था मे श्री के० के० गोविल पी० सी० एस० सैक्रेटरी, बद्रीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति और सेठ सत्य नारायण ओमप्रकाश पण्डा ने पूरा-पूरा सहयोग दिया।

जैसे ही मुनि श्री बद्री विशाल पहुँचे, वहाँ के धर्माधिकारी, विद्वानो और मन्दिर कमेटी अधिकारियो व सदस्यो ने मुनि श्री का हार्दिक स्वागत किया। वे मुनि श्री को जुलूस के रूप मे बद्रीनाथ मन्दिर के सामने वाले राजकीय अतिथि गृह तक ले गये। मुनि श्री को यही ठहराना था। मार्ग में हजारो यात्रियो ने, साधु-सन्तो ने और विद्वानो ने मुनि श्री का स्वागत और अभिनन्दन किया। वास्तव मे इस समय बद्रीनाथ स्थल 'दिगम्बर दर्शनधाम' बना हुआ था। जहाँ साथियो ने इस उत्तुग शिखर से दिशा और आकाश (दिक्+अम्बर) के स्पष्ट रूप मे दर्शन किये वहाँ बद्रीनाथ के लोगो ने मुनि श्री विद्यानन्द के दिगम्बर रूप मे दर्शन किये। इतना ही नही, हमारे सभी साथियो ने

तो आगामी दिनो मे अभिषेक के समय श्री बद्रीनाथ मूर्ति को भी दिगम्बर रूप मे देखा ।

पुराणो मे श्री शिवजी (महादेव जी) को दिगम्बर नाम से सबोधित किया गया है और जैन मान्यतानुसार जैनियो के सभी तीर्थकर और मुनि दिगम्बर होते है । जैन तीर्थकरो मे श्री वृषभदेव ने कैलाश से निर्वाण प्राप्त किया है । सम्भवत यह स्थान निश्चय ही उनकी तपोभूमि रही है । बद्री विशाल की मूल-मूर्ति की स्वाभाविक मुद्रा भी नग्न दिगम्बर तीर्थकर जैसी है । जो भी हो, मुनि श्री के यहाँ आगमन के दिनो इधर चारो ही ओर दिगम्बरत्व के दर्शन हो रहे थे । अत हमारी दृष्टि मे इस धाम को उस समय का 'दिगम्बर-दर्शन धाम कहना उचित है क्योकि **'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ।'**—वास्तव मे यह तीर्थ सबका समन्वय धाम है । मन्दिर मे भी नित्य प्रति भगवदाराधना के समय समन्वयपूर्ण निम्न पाठ पढा जाता है—

'य शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटव. कर्त्रेति नैयायिका ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता· कर्मेति मीमांसकाः ।
सोऽय वो विदधातु वाछित फल त्रैलोक्य नाथो प्रभुः ॥'

—हनुमान नाटक

ज्ञान सर्वाद्धिनी सभा मे

मुनि श्री के बद्रीनाथ पहुँचने की चर्चा तो यहाँ कोने-कोने मे व्याप्त हो चुकी थी । लोग दर्शनो को उमडे पड रहे थे । सभी को चाह थी कि वे जल्दी-जल्दी मुनि श्री की अमृतमयी वाणी से अपने कल्याण के साधक जुटा सकें और आत्महित मार्ग मे अग्रसर हो सकें । आखिर, विद्वत्ता भी तो इसी मे है जो लाभ के अवसर को न खोया जाय । बस, क्या था ? बात की बात मे बद्रीनाथ के प्रमुख विद्वान् मुनि श्री के पाद-मूल मे एकत्रित हो गये और मुनि श्री से विविध प्रार्थनाए करने लगे । उन्होने मुनि श्री की स्तुति तो की ही, साथ ही उनसे प्रवचन की प्रार्थना भी करने लगे । ठीक ही है—विद्वान् तो चारित्र की प्रधानता पर ही दृष्टि रखते हैं । कहा भी है—

'स्तुवन्ति नित्य धनिक दरिद्रा,
धनी च विद्वत्पदपीठसेवी ।
स चापि चारित्र-पदावलग्नो,
भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता ॥'

मुनि श्री ने वहाँ के विद्वानो की प्रार्थना को स्वीकार किया और निश्चित समय पर सभा मे पधारे।

स्मरण रहे कि बद्री-विशाल धाम विद्वानो का अच्छा खासा गढ है। यहाँ सभी प्रान्तो के विद्वान् पाये जाते हैं। इन विद्वानो ने अपने प्रयत्नो से यहाँ ज्ञान-सवर्द्धिनी नाम की एक सभा स्थापित कर रखी है जिसके माध्यम से यहाँ और आस-पास की जनता मे धर्म का प्रचार होता रहता है। श्री सत्यनारायण शास्त्री बाबुलकर, श्री मुरलीधर शास्त्री व श्री भगवतीशरण निर्मोही जैसे अनेकानेक विद्वानो ने मुनि श्री का अभिनन्दन किया और उन्होने मुनि श्री मे अनेको लोक दुर्लभ गुणो का समन्वय देखा।[1] उनका भाव था—

पाणी भैक्ष्यमुदारवृत्तिरचना वाचा परिस्यन्दने।
निर्दोष कठिन दिगम्बरमिद पुण्यार्जित सुव्रतम् ॥
ये वैराग्य विभूषिता अनुदिन लोकोपकारे रता—
विद्यानन्द' मुनीश्वरा विजयिनो नित्य सुख बिभ्रति ॥'—

उनका कहना था—इन्द्रिय विजयी विद्यानन्द मुनीश्वर नित्य ही सुखी है। ये आहार के समय पाणि-पात्र हैं, उदार-वृत्ति हैं, वाणी मे भी उदार हैं। इन्होने निर्दोष और कठिन दिगम्बर व्रत को धारण कर रखा है—यह पूर्व जन्मो का सचित पुण्य है। मुनि श्री अहर्निश वैराग्य से विभूषित और लोकोपकार मे तत्पर हैं।

इतना ही नही। वहाँ के विद्वानो ने सभा मे विराजमान मुनि श्री मे सुवक्ता के समस्त लक्षणो का अवलोकन भी किया। तथाहि—

'सर्वेषा दर्शनाना मनसि परिगत ज्ञानवेत्ता भवेद्धि,
वक्ता शास्त्रस्य धीमान्विमल शिव सुखार्थी सुतत्त्वावभासी।
निर्लोभ शुद्धवाग्मी सकलजनहित चिन्तक. क्रोधमुक्तो,
गर्वोन्मुक्तो यमाढ्यो भवभयचकितो लौकिकाचारयुक्त ॥'
—सोमदेवाचार्य, १/२०

वह सुवक्ता है जो सब दर्शनो का ज्ञाता है, बुद्धिमान है, निर्वाणसुख का

---

१ 'एकश्चरति य पश्यन्नजहाति न हीयते।
अनग्निरनिकेत स्याद् भिक्षार्थं ग्राममाश्रयेत् ॥
अश्वस्तनविधान स्यान्मुनिर्भावसमन्वित।
लघ्वाशी नियताहार सकृन्न निषेविता ॥
यस्मिन् वाच प्रविशन्ति कूपे प्राप्ता शिला इव।
न वक्तार पुनर्यान्ति स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥'
—महाभारत, शान्तिपर्व २३७/५-७

चाहने वाला है, तत्त्वो के स्वरूप को स्पष्ट शब्दो मे समझाने वाला है, लालसा रहित है, जिसके वचन मिष्ट और स्पष्ट हैं, जो सभी श्रोताओ की हित-कामना करता है, क्रोध से रहित है, सर्व प्रकार के गर्व से निर्मुक्त है—नम्र है, यम-नियमो से युक्त है, ससार के पापो से डरने वाला है और लौकिक सदाचार से परिपूर्ण है।

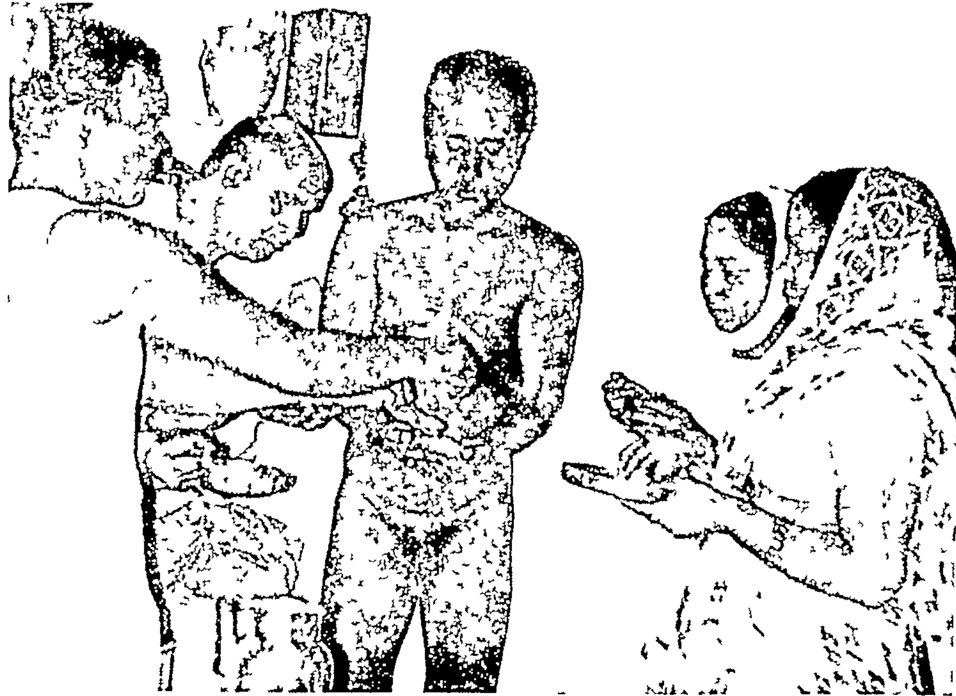
सभा-मच पर विराजमान मुनि श्री सभा मे यद्यपि आयु की अपेक्षा अनेको पुरुष वृद्ध थे। उनके चेहरो व केश आदि से यह स्पष्ट भान हो रहा था कि उन लोगो की आयु मुनि श्री से अधिक है। परन्तु सभी मुनि श्री को अपने से वृद्ध मान रहे थे और इसीलिए उन्होने मुनि श्री को उच्चासन दिया था—वे लोग स्वय नीचे बैठे थे। ठीक ही है—

'स्वतत्त्वनिकषोद्भूत विवेकालोकवर्धितम्,
येषां बोधमय चक्षुस्ते वृद्धा विदुषां मताः।
तप. श्रुतधृतिध्यानविवेक यमसयमै.,
ये वृद्धास्तेऽत्र शस्यन्ते न पुन' पलिताकुरै ॥'—
—ज्ञानार्णव १५/५

जिनके, आत्मतत्त्वरूप कसौटी से उत्पन्न भेद-ज्ञानरूप आलोक से वढाया हुआ ज्ञानरूपी नेत्र हैं, विद्वानो ने उन्हे ही वृद्ध कहा है। एव जो तप, शास्त्रा-ध्ययन, धैर्य, ध्यान, विवेक, यम और सयमादि से बढे हुए हैं, वे ही वास्तव मे वृद्ध हैं, बडे हैं। केवल अवस्था मे वडे (ज्येष्ठ) होने से अथवा केशो के श्वेत होने से किसी को वृद्ध नही कहते।

इस प्रकार सब कुछ मिलाकर सभा मे पूर्ण धार्मिक और प्रभावक वाता-वरण उपस्थित था। ऐसे पुनीत वातावरण मे ज्ञानवर्धिनी सभा के प्रमुख श्री सत्यनारायण शास्त्री बाबुलकर ने मुनि श्री का बडे नम्र शब्दो मे गुण-गान करते हुए मुनि श्री के प्रति कृतज्ञता को प्रकट किया। उन्होंने कहा **भारत पर जैन तीर्थंकरों व श्रमण दिगम्बर मुनियों की सदा से कृपा रही है,** वे सदा ही सन्मार्ग का उपदेश देते रहे हैं। उन्होने दिगम्बर मुनि-वृत्ति का वडे सुन्दर ढग से विवेचन करते हुए दिगम्बर-वृत्ति को सर्वोपरि वतलाया। उनका भाव था कि—

'एकचार्य प्रमत्तः स्यादनिकेतो गुहाशय,
अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोल्प भाषणः।
गृहारम्भोतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मन',
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥'—
—भागवत ११/६/१४-१५



आहारदान—(एक दृश्य)

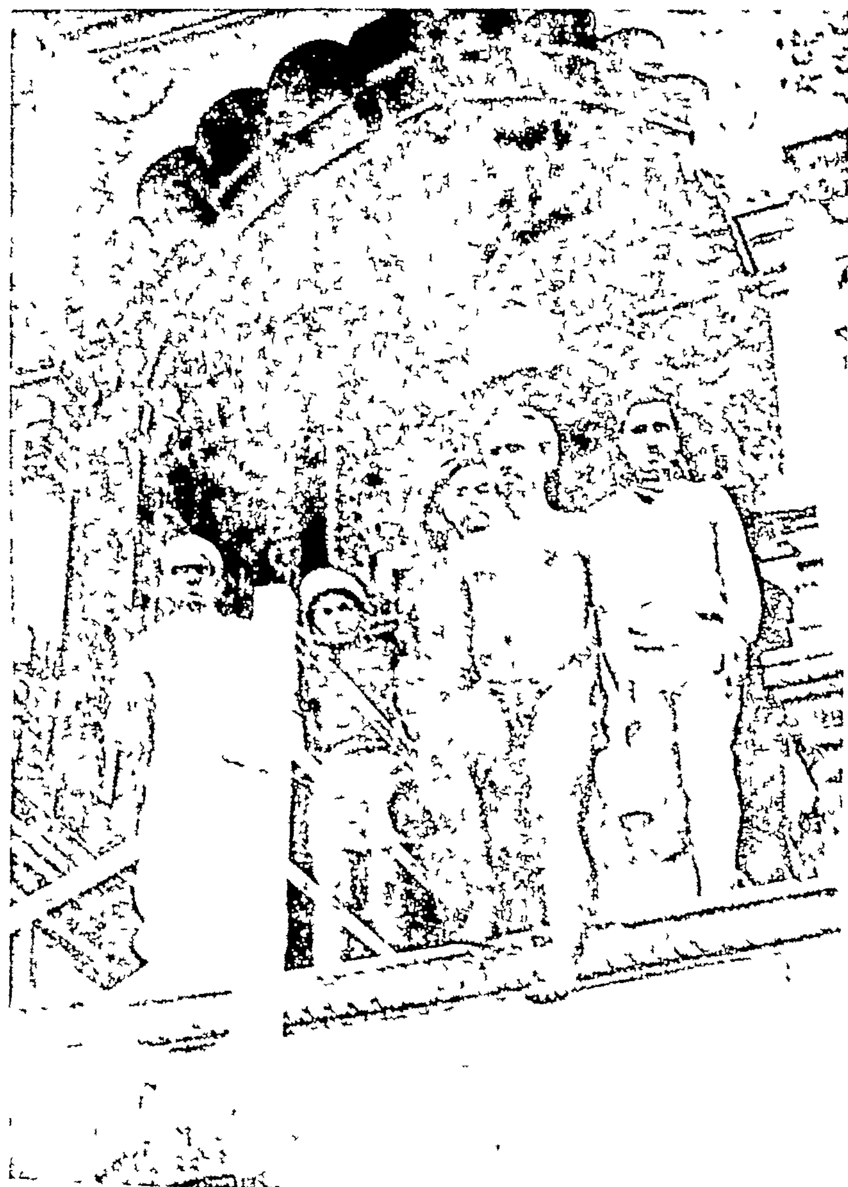


श्री बद्री विशाल मन्दिर के अन्दर पलसन के लिये जाते हुए

मुनि श्री विद्यानन्द



बद्री-विशाल पीठ पर प्रवचन करते हुए
(१-६-७०)



बद्रीविशाल-मन्दिर के द्वार पर—प्रवचन के अनन्तर

यह शरीर नश्वर है, इसके लिये गृह आदि निवास स्थान का निर्माण करना विफल है और आसक्ति जनक होने से परिणाम मे दु खोत्पादक है। सर्प कभी स्वय बिल नही खोदता, अन्य द्वारा निखात बिल मे सुखपूर्वक रहता है। अतएव मुनि के लिए यह आवश्यक है कि वह अकेला विचरण करे, प्रमाद से रहित हो, घर न बनाए, गुहा मे शयन करे, अपने आचारो का प्रदर्शन न करे और अल्पभाषी हो।

साधु बनने की चाह बहुतो को होती है और अनेको लोग साधु वेश धारण करते हुए देखे भी जाते हैं। वे नगर मे निर्मित गृह को छोड वन भी चले जाते हैं। परन्तु मात्र घर को छोडने और वन मे वास करने से साधुवृत्ति का निर्वाह नही होता। वह तो क्रोध-मत्सर आदि के परित्याग मे ही होता है। मुनि श्री मे साधु के समस्त गुणो का समन्वय है। अत ये ही परम-साधु हैं, ये ही परमगुरु हैं—ऐसा भान हो रहा था। कहा भी है—

ग्रामान्निष्क्रम्य मुनयो, विगत क्रोधमत्सरा.।
वने कुटुम्ब धर्माणो दृश्यन्ते परमोहिता ॥'—
—महाभारत-शान्तिपर्व १५/२७

कितने ही मुनि क्रोध और ईर्ष्या से रहित हो ग्राम से निकलकर वन मे चले जाते हैं और वहीं मोह-वश गृहस्थ धर्म मे अनुरक्त दिखाई देते हैं।

वनेऽपि दोषा. प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि य' प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृह तपोवनम् ॥
स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां स्वेष्वेव दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम् ॥
न शब्द शास्त्रे निरतस्य मोक्षो न वर्णसङ्गे निरतस्य चैव।
न भोजनाच्छादन तत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य।
एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य सर्वेन्द्रिय-प्रीति-निवर्तकस्य।
अध्यात्मयोगे गतमानस्य मोक्षो ध्रुव नित्यमहिंसकस्य ॥
—(महर्षि व्यासकृत)—पद्म पुराण ५/१६/२१७-२०

रागियो के वन मे भी दोष होते हैं और गृहस्थो के घर मे रहते हुए भी पचेन्द्रिय निग्रह रूप तप होता है।[1] जो शुभ कर्म मे प्रवृत्त है ऐसे वीतराग पुरुष के लिये घर भी तपोवन है। जो अपने धर्म-कर्म द्वारा आजीविका कमाते

---

१ 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैन मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने ॥
—रत्नाकाण्ड श्रावकाचार

हैं, जो अपनी स्त्रियो मे ही सन्तुष्ट रहते है, ऐसे जितेन्द्रिय, अतिथिप्रिय पुरुषोत्तमो को घर मे भी मोक्ष है। जो व्याकरण मे ही उलझा हुआ है उसको मोक्ष नही है। जो शब्द जाल मे ही उलझ रहा है, जो भोजन-वस्त्र मे ही मग्न है और जो लोक रजक है उसको भी मोक्ष नही होता। (परन्तु जो) एकान्तप्रिय है, दृढव्रती है, सम्पूर्ण इन्द्रियजयी है, अध्यात्मयोग मे रमण करता है और सदा अहिंसक रहने वाला है, उसको निश्चय से मोक्ष होता है।

प्रारम्भिक स्वागत-सत्कार आदि क्रियाओ से निवृत्त हो, श्री बाबुलकर ने मुनि श्री से प्रार्थना की कि वे अपने प्रवचन से उपस्थित जन-समूह को आत्म-दृष्टि प्रदान करें। गुरु के बिना ज्ञान असम्भव होता है, और मुनि श्री परम गुरु हैं, उनके प्रसाद से ही ज्ञानलोचन खुल सकते हैं—

'गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञान लोचनम्।
समस्त दृश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम्॥
ये गुरु नैव मन्यन्ते तदुपास्तिं न कुर्वते।
अधकारो भवेत्तेषामुदितेऽपि दिवाकरे॥
अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरवे नम॥'—

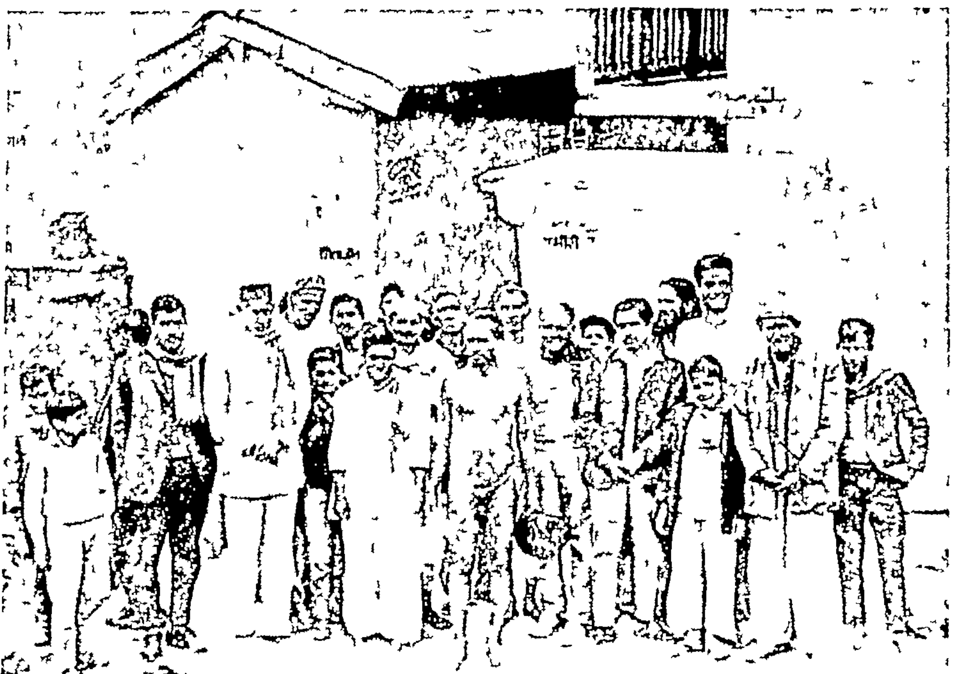
ज्ञानसंवर्धिनी सभा मे प्रवचन

'गृह्णासि शय्याहृतिपुस्तकोपधीन्,
सदा परेभ्यस्तपसस्त्विय स्थिति।
तत्ते प्रमादाद् भरितात् प्रतिग्रहै—
ऋणार्णमग्नस्य परत्र का गति॥

—अध्यात्मकल्पद्रुम १६२

हे सन्यासिन्, किसी से वसतिका, किसी से आहार, किसी से शास्त्र और किसी से इतर वस्तुएँ ग्रहण कर रहे हो। सदैव दूसरो से लेना पड रहा है—यह तुम्हारे तप की स्थिति है। इस प्रकार प्रतिग्रहो के भार से भरे हुए ऋण पर ऋण लेकर परलोक मे जाने पर किस गति को प्राप्त करोगे?

ज्ञान-सर्वद्धिनी सभा मे प्रवचन करते हुए मुनि श्री ने कहा—'हमारी भावना बहुत दिनो से इधर विहार करने की रही। यह प्राचीन, ऋषि और मुनियो की तपोभूमि है। यहाँ आदि तीर्थंकर श्री वृषभदेव के माता-पिता ने तप किया। इधर ही आगे जाकर कैलाश है, जहाँ से तीर्थंकर वृषभदेव ने मुक्ति



ज्ञान सर्वाधनी सभा मे–प्रवचन के अनन्तर

माई। और भी अनेको मुनियो ने इधर विहार किया और तप किया। मुनि चर्या बडी कठिन है और वर्तमान काल मे तो चर्यानुकूल साधनो का अभाव होने से यह पद और भी दुष्कर बनता जा रहा है। यही कारण है कि चिरकाल से इधर श्रमण दिगम्बर मुनियो का विहार रुद्ध रहा। उन्होने कहा—जब हम इधर आने का प्रोग्राम बना रहे थे, अनेको धर्मात्माओ ने हमे कहा कि महाराज, उधर जाना बहुत कठिन है। चर्यानुकूल साधन भी नही हैं। परन्तु समय आया, हमारे साथ लोगो की भावना भी बनी और उन्होने प्रयास किया, हम भी यहाँ आ पहुँचे।

वैसे तो दिगम्बर मुनि का पद आत्मकल्याण-हेतु ही धारण किया जाता है। परन्तु हम सोचते हैं कि जब श्रावको से हमारे आहार आदि की पूर्ति होती है तो उन्हें भी कुछ देना चाहिये। अन्यथा जीवन मे उनका भार ही अपने ऊपर रह जायगा—शल्य शेष रह जायगी। अच्छा है, यहाँ का यही लेखा-जोखा पूरा हो जाय। अत दो शब्द ज्ञान के कह देते हैं। आज हमे सन्तोष है कि बद्रीनाथ क्षेत्र पर इस 'ज्ञानवर्धनी सभा' मे हम विद्वानो को देख रहे हैं। वास्तव मे ज्ञान-वृद्धि करना और उसके साधन जुटाना भारतीय परम्परा रही है। क्योकि—ज्ञान के विना जीवन रिक्त है। जो विद्या (ज्ञान) रूपी रथ पर सवार रहता है वही सम्यग्दृष्टि है—

'विज्जा रहमारूढो मणोरह पहेसु भमइ जो चेदा।
सो जिणणाण पहानी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥'
—समयसार, २३६

—जो जीव विद्यारूपी रथ मे चढा-मनरूपी रथके चलने के मार्ग मे भ्रमण करता है, वह ज्ञानी पुरुप जिनेश्वर के ज्ञान—सम्यग्ज्ञान की प्रभावना करने वाला होता है।

मुनि श्री ने कहा—वे लोग बडे भाग्यशाली हैं जो निरन्तर ज्ञानाराधना मे रत हैं। विना ज्ञान के एक क्षण भी दु ख का कारण बन जाता है। वैसे तो चीटी से हाथी तक सभी जीवो मे ज्ञान होता है पर ज्ञान-ज्ञान मे भेद होता है। एक ज्ञान सम्यक् (सच्चा) और दूसरा ज्ञान मिथ्या है। अध्यात्म-विद्या मे आत्मा की ओर ले जाने वाला ज्ञान सम्यक् और आत्म व्यतिरिक्त बहिरग की ओर ले जाने वाला ज्ञान [आत्म-हित की दृष्टि से] मिथ्या होता है। यद्यपि व्यवहार मे लोक-हित भावना युक्त ज्ञान भी सम्यक् कहलाता है। जो ज्ञान स्थिर रहे अर्थात् जिसमे सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय न हो वह ही आत्म सन्मुख होने पर कल्याणकारी है। अत ऐसे ज्ञान की निरन्तर आराधना

करनी चाहिये। शास्त्रो मे ऐसी आराधना को अभीक्षण ज्ञानोपयोग के नाम से सम्बोधित किया गया है।

'अभीक्षण तु मुहुमुहु'—अर्थात् अभीक्षण का अर्थ है—वारम्वार। जो जीव वारम्वार जगत् के पदार्थों और आत्म तत्त्व के स्वरूप का चिन्तवन करते हुए आत्मा को पर-पदार्थों से भिन्न अनुभव करते हैं वे ही आत्मानुभूति के पात्र होते हैं। हमारे प्राचीन आचार्यों ने सप्ततत्त्व और नव-पदार्थों का वर्णन भी इसीलिये किया है कि जीव स्व-पर दोनो को जाने। जव तक पर का वोध न होगा तव तक स्व का वोध न होगा और स्व-वोध के अभाव मे पर-वोध न होगा। जैसे सत्य के वोध मे असत्य का बोध, प्रकाश के वोध मे अधकार का वोध अपेक्षित है। वैसे ही आत्म-वोध मे पर-वोध सहायक है। इसीलिए कहा है—

'अप्पाणमयाणन्तो अणप्पय चावि अयाणन्तो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणन्तो ॥'

—समयसार, २०२

—जो आत्मा को नही जानता और पर को भी नही जानता, ऐसा जीव, जीव और अजीव दोनो को न जानने के कारण सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? अर्थात् नही हो सकता।

शास्त्रो मे अध्यात्म विद्या का माहात्म्य गाया गया है। यह विद्या हमे क्षत्रियो से प्राप्त हुई—इसके मूल मे क्षत्रिय रहे। वाद को यही ब्राह्मणो द्वारा प्रचार मे आई। अर्थात्-अध्यात्म-विद्या के जनक क्षत्रिय रहे और प्रचारक ब्राह्मण। तीर्थंकर वृषभदेव क्षत्रिय थे, तीर्थंकर महावीर क्षत्रिय थे, श्री भगवान राम और नारायण श्री कृष्ण भी क्षत्रिय थे, महाराजा जनक भी क्षत्रिय थे जिन्होने अध्यात्म का उपदेश दिया। इनके उपदेशो को प्रसारित करने वाले गौतम गणधर ब्राह्मण थे। इससे सिद्ध है कि अध्यात्म विद्या आत्म वल प्रधान विद्या है। छान्दोग्योपनिषद् मे एक स्थान पर उल्लेख है कि—

'यथेयं न प्राक्त्वत्त पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति।
तस्मात्तु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूत् ॥'

—छान्दोग्योपनिषद् ५/३/७,

भाष्य = 'तत्रास्ति वक्तव्य—तथा येन प्रकारेण इय विद्या प्राक् त्वत्तो ब्राह्मणान् न गच्छति न गतवती, न च ब्राह्मणा अनया विद्यया अनुशासितवन्त यथा एतत् प्रसिद्ध लोके यत। तस्मादु पुरा पूर्वं सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव

क्षत्रजातेरेव अनया विद्यया प्रशासन प्रशास्तृत्व शिष्याणामभूत् वभूव । क्षत्रियपरपरयैवेय विद्या एतावन्त कालमागता । तथाप्येता अह तुभ्य वक्ष्यामि । त्वत् सप्रदानादूर्ध्वं ब्राह्मणान् गमिष्यति । अतो मया यदुक्त तत्क्षन्तुमर्हसीत्युक्त्वा तस्मै ह उवाच विद्या राजा ।'

—छान्दोग्योपनिषद् शाकरभाष्य, ५/७

—'क्षत्रियो से पूर्व आध्यात्मिक विद्या ब्राह्मणो को प्राप्त नही हुई अतएव यह मान्यता युक्तिसगत है कि सम्पूर्ण लोक पर क्षत्रियो का ही प्रशासन था। ['ऋषभ पार्थिवश्रेष्ठ सर्वक्षत्त्रस्य पूर्वजम्'—ब्रह्माण्डपुराण २/१४] गौतम को ब्रह्मविद्या सम्बन्धी प्रश्न करते सुनकर उस क्षत्रिय नृपति ने कहा [उसी का वक्तव्य कहते हैं]—जिस प्रकार यह विद्या तुमसे पूर्व ब्राह्मणो को प्राप्त नही हुई और न ब्राह्मण इस विद्या से अनुशासित हुए ऐसी ही वात लोक प्रसिद्ध है। अत पूर्व सब लोक पर क्षत्रिय जाति का ही इस विद्या द्वारा प्रशासन हुआ। क्षत्रिय परम्परा से ही यह विद्या इतने काल पर्यन्त प्रवृत्त रही तथापि अव मैं तुम्हें बताऊगा। आज से तुम्हारे पश्चात् यह ब्राह्मणो मे प्रसारित होगी। अत मैंने जो कहा उसे क्षमा करना। तत पश्चात् राजा ने विद्योपदेश किया।'

'ज्ञान वर्धिनी सभा' अध्यात्म के प्रचार पर वल देती होगी ऐसा हम मानते हैं। क्योकि भौतिक विद्या मे तो यह लोक स्वत ही प्रवृत्त हैं। वालक को दूध पीना कौन सिखाता है, कौन उसे निद्रा के लिये प्रेरित करता है। वालक मे भय और वडे होने पर अवस्थानुसार परिग्रह सचय की कामना पूर्व सस्कारो द्वारा स्वत ही सिद्ध है। उसे परमार्थ मे लगाना, उसमें अध्यात्म की रुचि उत्पन्न करना ही तो श्रेयोमार्ग है। यह कार्य विद्वानो का है, साधु और सन्तो का है। आप विद्वान् हैं और वास्तव में विद्वान् ही तो साधु है। वाह्य वेश मात्र से उच्च पद नहीं, अपितु कार्य की श्रेष्ठता मे उच्च पद होता है और कार्य की श्रेष्ठता का परिचायक आगम होता है।

आजकल ऐसा भी देखने मे आता है कि लोग हठवशात् अथवा मान-प्रतिष्ठा के लोभ मे अपनी कही वात (चाहे वह शास्त्र के विपरीत ही क्यो न कह दी गई हो) की पुष्टि करते हैं। वे आगम ग्रन्थो के अनर्थ भी कर देते हैं। ऐसा पहिले भी और सदा से होता रहा है। कभी किसी ने 'अज' का शब्दार्थ प्रसग देखे विना, 'वकरा' कर दिया जवकि उसका अर्थ, प्रसग मे 'न जायते' —'जो पैदा न हो सके ऐसे धान्य' से था। ऐसी एक भूल से कालान्तर में सैकडो, हजारो और लाखो प्राणियो का घात हुआ। अत हमे पापो से वचने

के लिये सदा सतर्क रहना चाहिये और आगम ग्रन्थो मे दोष नही आने देना चाहिये। यदि विद्वानो ने इसका ध्यान रखा तो वे लोक के प्रति पूर्ण अनुकम्पा करेंगे, ऐसा हमारा मत है। आचार्य भट्टाकलकदेव एक स्थान पर कहते हैं—

'बालाना हितकामिनामतिमहापापै. पुरोपार्जितै—
र्माहात्म्यात्तमस स्वयं कलिबलात् प्रायोगुणद्वेषिभि. ।
न्यायोऽय मलिनीकृत कथमपि प्रक्षाल्य नेनीयते,
सम्यग्ज्ञानजलैर्वचोभिरमलं तत्रानुकम्पापरै' ॥'

—भट्ट अकलकदेवस्य,

—'आत्महितेच्छु शास्त्राध्ययन करने वालों के पूर्वभव मे उपार्जित महापापो के उदय से अविद्या के माहात्म्य से और स्वय कलियुग के काल प्रभाव से गुण-द्वेष्टाओ ने इस न्याय शास्त्र को मलिन कर दिया है। किन्तु अनुकम्पापरायण उसे आज भी सम्यग्ज्ञानरूपी जल से तथा शास्त्रवचनो से कथमपि (परिश्रमपूर्वक) प्रक्षालित कर रहे है।'

आप यह तो जानते ही हैं कि 'आगमचक्खू साहू'—अर्थात् साधु-सज्जन या विद्वानो के चक्षु आगम हैं और आगमो से ही सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है। मेरा भाव-सम्यग्ज्ञान वह ज्ञान है जो दु ख-सकटो के आने पर भी दृढ रहे—न पिघले। ऐसे ज्ञान मे दृढ रहने के लिये मानव का कर्त्तव्य है कि वह दु:खो से परिचित होता रहे—दु ख सहन करता रहे। लोग घर की समस्त सुविधाएँ छोडकर वन मे चले जाते है—साधु हो जाते हैं और वहाँ कष्टो का अनुभव करते हैं। इसका तात्पर्य यह ही है कि सकटो के अभ्यासी होने पर वे अनायास सकट के समय अपने धर्म-ध्यान मे स्थिर रह सकें—यह अभ्यास इसीलिये है। लोग हमसे पूछते हैं—आप नग्न क्यो रहते हैं ? सकटो को निमन्त्रण क्यो देते हैं, आदि। हम उन्हे क्या उत्तर दें ? हम तो वही कह देते हैं जो हमारे पूर्वाचार्यों ने कहा है—

'अदु खभावित ज्ञान क्षीयते दु खसन्निधौ ।
तस्माद्यथाबलं दु खैरात्मान भावयेन्मुनि ॥'

पाण्डव जब वन मे गये, लोगो को बडा दु ख हुआ। कोई व्यक्ति वन मे युधिष्ठर महाराज के पास उन्हे सान्त्वना देने गया। पर वहाँ जाकर देखा तो वे प्रसन्न मुद्रा मे थे। बडा लज्जित हुआ।

दु ख सुख की महिमा क्या कहे ? ये तो कर्म जनित व्याधियाँ हैं। कोई इन्हें उत्पन्न या नष्ट नही कर सकता। इन्हे तो जीव अपने सम्यग्ज्ञान से स्वय

ही दूर कर सकता है। राम को कितने सकट आये, सीता ने क्या क्या विपत्तिया नही उठाई ? प्रथम तीर्थंकर श्री वृषभदेव (जिनके माता-पिता ने इसी स्थान पर तप किया) को भी अशुभ कर्म के उदय से छह मास तक आहार-विधि नही मिली। तथाहि—

'पुरा गर्भादिन्द्रो मुकुलितकर किंकर इव,
स्वय स्रष्टासृष्टे पतिरथ निधीना निजसुत ।
क्षुधित्वा षण्मासान् स किल पुरुरप्याट् जगती—
महो ! केनाप्यस्मिन् विलसितमलघ्य हतविधे ॥'

—आत्मानुशासन, ११९

—अहो, जिन्हें पूर्व समय मे गर्भ काल से ही इन्द्र भृत्यवत् अजलिवद्ध होकर सेवा करता था, स्वय जो कर्मभूमि के स्रष्टा थे, जिनका पुत्र भरत चक्रवर्ती षट्-खण्डाधिपति था—वह पुरु (आदि) देव तीर्थंकर वृषभदेव षण्मासावधि क्षुधित होकर पृथ्वी पर विहार करते रहे। इस दुष्ट कर्मगति का उल्लघन कर पाना किसी के लिये भी दुष्कर है।

उक्त सब प्रसग हैं जो हमे सम्यग्ज्ञान मे दृढ़ रहने की शिक्षा देते हैं। आशा है ज्ञानवर्धिनी सभा इस दिशा मे सदा प्रयत्नशील रहेगी। हमारी कामना है कि यहाँ के विद्वान् दल व जातिगत भेदो को प्रश्रय न दे सदा वीत-राग भाव से सम्यग्ज्ञान के प्रचार मे सदैव अग्रसर रहेगे—हमारा सबको आशीर्वाद है। हिमालय के इस क्षेत्र की प्रशसा बहुत दिनो से सुनते रहे थे। यहाँ के धर्मानुरागी श्री रावल जी ने भी हमे बडौत मे कहा था। आज हमे सब आखो से देखने को मिला। हमारा कहना तो यही है कि धर्म सबका रक्षक है और धर्म ही मोक्षदाता भी है। इसी की शरण मे जाओ और इसी को नमन करो—

'धर्म सर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्नुते शिव सुख धर्मायतस्मै नम ।
धर्मान्नास्त्यपरो सुहृद्भवभृतां, धर्मस्यमूलं दया,
धर्मे चित्तमह दधे प्रतिदिन, हे धर्म ! मा पालय ॥

मुनि श्री के प्रवचन के अनन्तर श्री मुरलीधर शास्त्री ने मुनि श्री का आभार प्रदर्शित किया। यहाँ विभिन्न भाषा भाषियो का सगम होने से अनेको विद्वानो ने अपनी-अपनी भाषा मे मुनि श्री से चर्चा वार्ता भी की। कन्नड के विद्वान् मुनि श्री से वडी देर तक कन्नड मे वार्ता करते रहे। जब विद्वानो ने

मुनि श्री से इस क्षेत्र में अधिक दिनो तक रहने की प्रार्थना की तब हमें भद्र-वाहु चरित्र की एक कारिका याद आ गई—

'स्वामिन्नत्र कृपां कृत्वा स्थीयता स्थिर चेतसा ।
यतो गुरुं बिना सर्वे भवन्ति पशुसन्निभाः ॥'—६९

—हे स्वामिन्, कृपया स्थिर मन से यहाँ विराजमान रहिये—मत जाइये। क्योंकि गुरु के विना सव पशुओ के सदृश होते हैं।

सभा-विसर्जन के पश्चात् मुनि श्री निकटवर्ती स्थलो को देखते हुए निवास स्थान पर आ गए।

दूसरा दिन

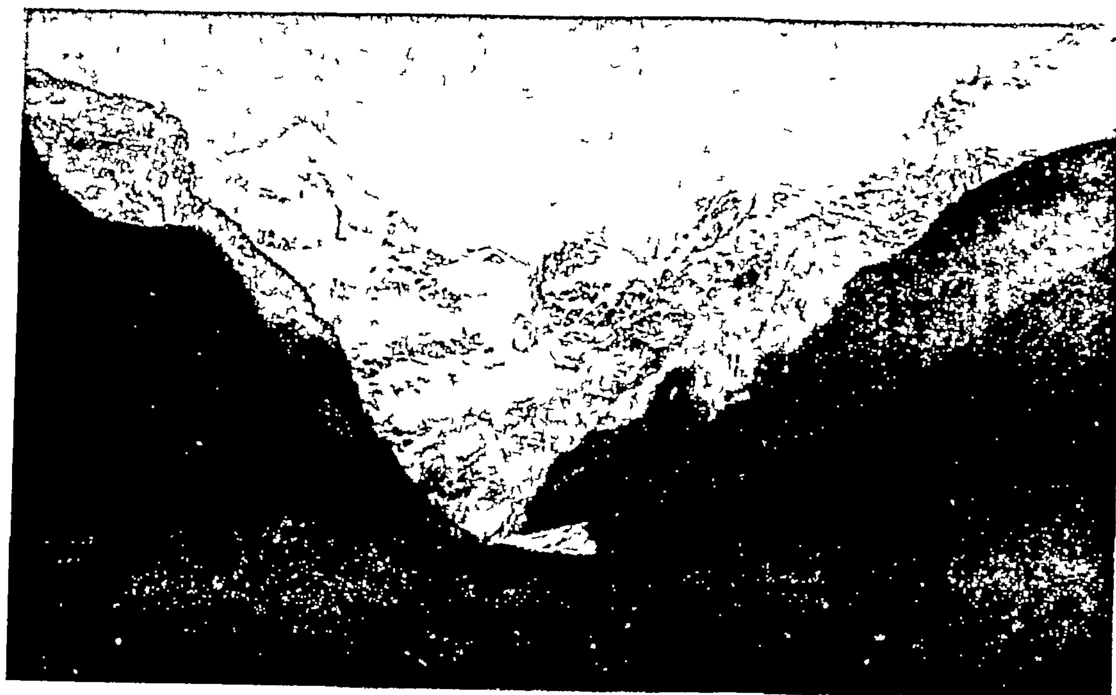
आज ३१ मई थी। मुनि श्री के वद्रीनाथ पहुँचने के वाद धीरे-धीरे वाहर से पर्याप्त जैन-श्रावक वहाँ जा पहुँचे। मन्दिर व्यवस्था के अनुसार अनेको जैन-श्रावको ने १५१ रुपये देकर अभिषेक-दर्शन सम्वन्धी कई टिकिट खरीद लिये थे—सभी अभिषेक मे गये। नियत समय से पूर्व मन्दिर के धर्माधिकारी प्रभृति सज्जन मुनि श्री की सेवा मे आये। उनके प्रार्थना करने पर मुनि श्री वद्रीनाथ मन्दिर मे पधारे। यहाँ श्री रावल जी पहिले से ही मौजूद थे। मुनि श्री के वैठने की व्यवस्था पहिले ही पूरी कर ली गई थी। श्री रावल जी मुनि श्री को अन्दर श्री वद्रीविशाल की मूर्ति के सन्निकट ले गये और स्वय हाथ मे घृतदीपक लेकर उसके प्रकाश मे मुनि श्री को मूर्ति के अग-प्रत्यग का विधिवत् पूर्ण ज्ञान कराया। मुनि श्री ने मूर्ति को वडे ध्यान से देखा—उन्हें मूर्ति मे पूर्ण दिगम्वरत्व दिखलाई दिया। मन्दिर मे मुनि श्री को सर्वोच्च आसन दिया गया था। श्रावको ने भी यथा स्थान बैठकर निर्वाण-दर्शन किया।

मन्दिर कमेटी के प्रवन्धको, विद्वानो एव यात्रियो के आग्रह पर मुनि श्री ने मन्दिर मे भी दो दिन प्रवचन किया। प्रवचन की व्यवस्था मन्दिर की मुख्य सभा-गद्दी पर की गई थी। मुनि श्री के प्रवचन के समय सभा एव मदिर के प्रागण खचाखच भर जाते थे। यहाँ के लोगो की स्मृति के अनुसार मुनि श्री का यहाँ आगमन एव उस मूल धर्म स्थान से प्रवचन दोनो ही इतिहास की अपूर्व घटना वन कर रहे। लोगो को यह भी आश्चर्य रहा कि इस हिम-प्रधान पर्वत शिखर पर दिगम्बर मुनि निर्द्वन्द्व और निरावाध विचरण कर रहे हैं। मुनि श्री के यहाँ पधारने से दिगम्वरत्व की महती प्रभावना हुई। सभी के मुख से धन्य-धन्य की ध्वनि सुनाई दे रही थी। यहाँ मुनि श्री ने तीर्थंकर वृषभदेव के उपकार व हिमालय से उनके सवध और भारतीय प्राचीन सस्कृति के विवेचन (जैन एव अन्य रामायणो के आधार से) किये। उन्होने इस पर्वतीय



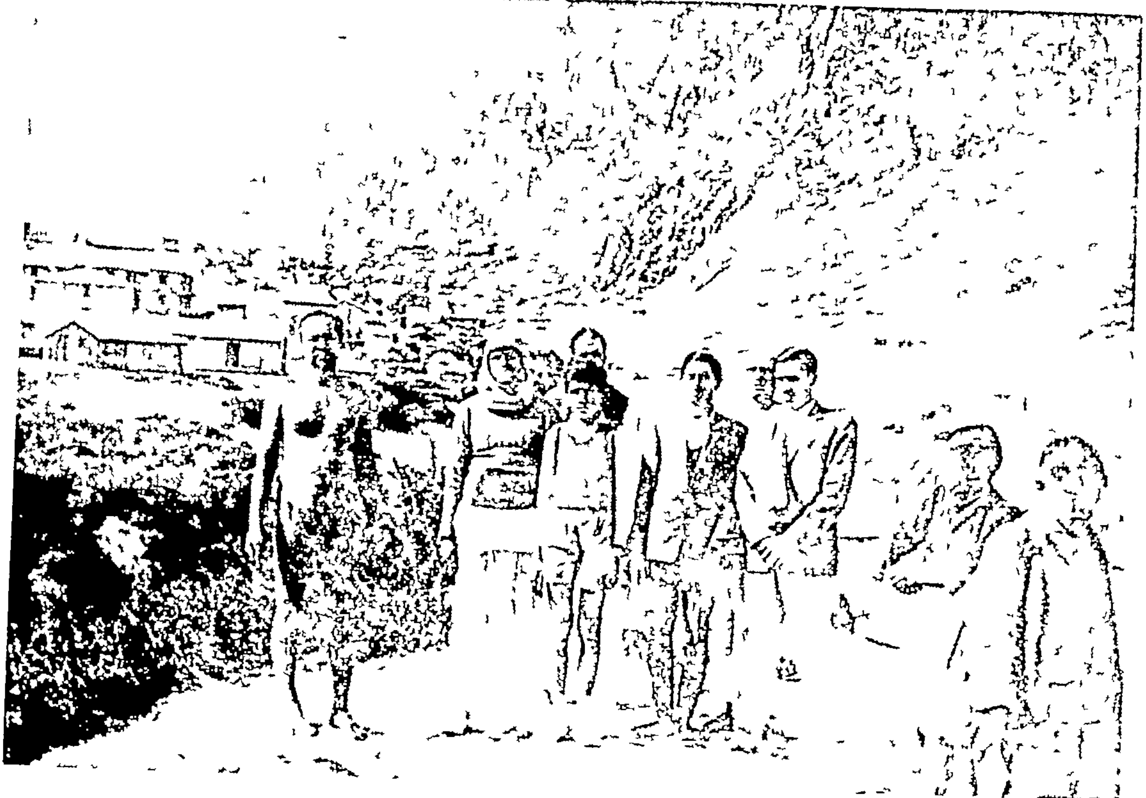
माणागाँव से आते हुए—

हिमाच्छादित नील पर्वत [२१५००']

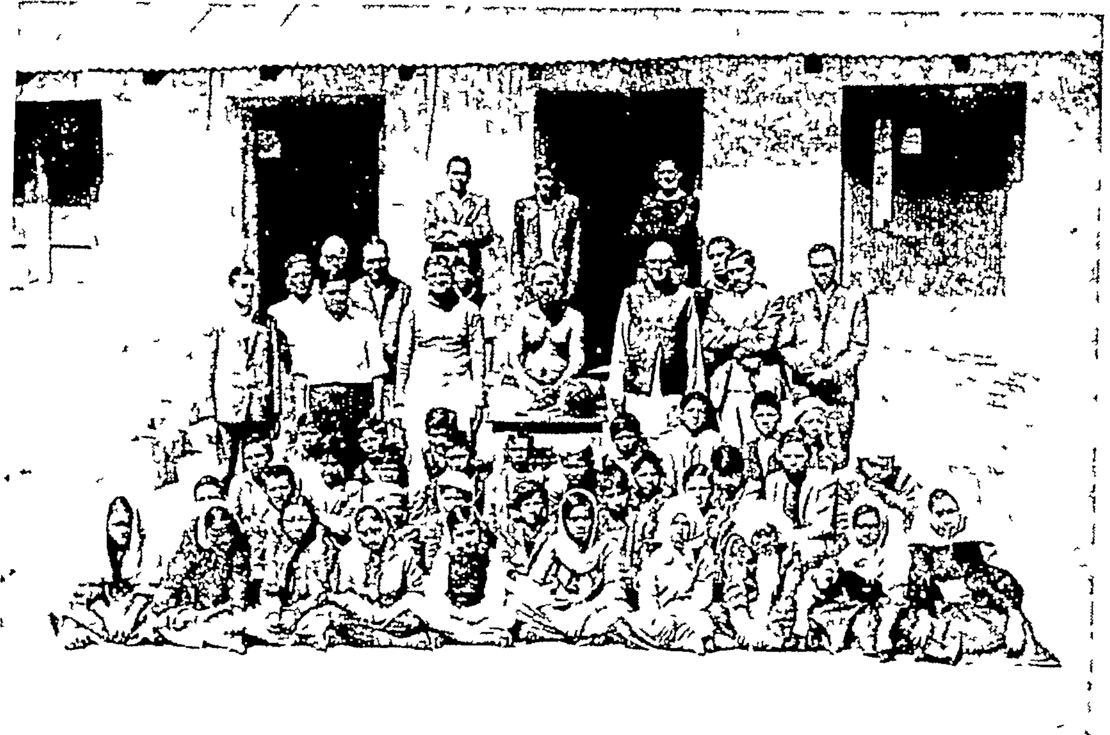


चरण-पादुका-स्थल

(जहाँ मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज, प० श्री पद्म चन्द्र शास्त्री व दरी गौडा दादा पाटील गये) [३१-५-७०]

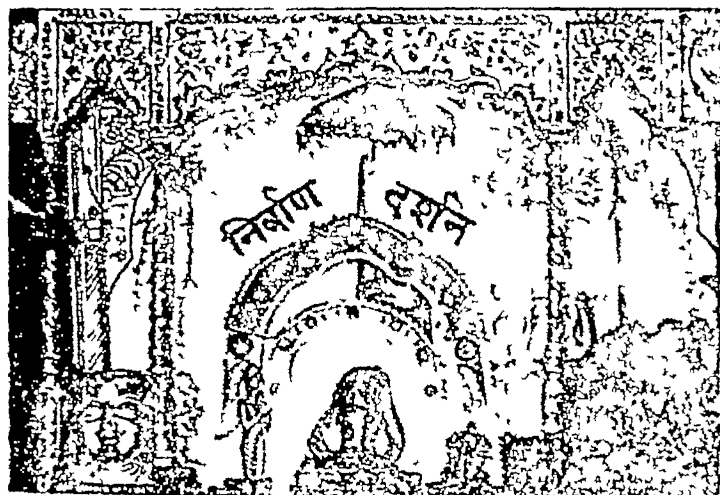


मुनि विद्यानन्द जी माणा गांव की ओर जाते हुये ।



माणा गाँव मे स्कूल के वच्चो के साथ

श्री बद्रीविशाल



प्रदेश के धर्मश्रद्धालुओ को कहा कि वे धन्य हैं जो इस कठिनाई के वातावरण में भी धर्म श्रद्धा मे रत रहते हैं।

माणा गाँव मे

दिनाक १ जून सन् १९७० को मुनि श्री भारत के सीमावर्ती 'माणागाँव' गये। मुनि श्री के आगे जैन-ध्वज भी चल रहा था।' 'माणा' शब्द प्राकृत मालूम होता है। यहाँ के जूनियर हाई स्कूल मे मुनि श्री ने प्रवचन किया। सघ की ओर से स्कूल के बच्चो के लिये श्री ला० सागरचन्द दिल्ली वालो के हाथो द्वारा १०१) प्रदान किये गये। इससे पूर्व जोशीमठ स्कूल मे भी ५१) दिये गये थे। स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री नित्यानन्द कगडियाल ने मुनि श्री का स्वागत किया। स्कूल मे ४५ वालक-वालिका उपस्थित थे। चार कमरो वाला एक छात्रावास भी है। यहाँ के छात्रो के नाम सिद्दान्त हैं। छात्राओं के नामो मे भारतीय इतिहास की पुट मिली। उनके नाम मन्दोदरी, द्रौपदी, सावित्री और आभा जैसे हैं। यहाँ की पोशाक भी विशेष ढग की है पर है सादगी लिये हुए। इधर ठण्ड से वचने के लिये प्राय कम्वल जैसे ऊनी वस्त्र की साडी का प्रयोग किया जाता है। कन्याएँ शिर पर साफा भी वाँधती हैं। ये स्कूल वर्फ के दिनो मे स्थान परिवर्तित कर लेता है—'छिनका' स्थान पर चल जाता है और वद्रीनाथ के पट खुलने पर खुलता, पट वन्द होने पर वन्द होता है। इस प्रदेश मे याक जाति की गाय होती है। इससे काम भी लिया जाता है और दूध भी। याक के वाल लम्वे-लम्वे होते हैं और सारे शरीर पर होते हैं। इनसे ठण्ड से रक्षा हो जाती है। इधर कुत्तो के वाल भी लम्वे, प्रकृति प्रदत्त होते हैं। दैनिक आवश्यक सामग्री लकडी तेल आदि की कमी होने के कारण यहाँ का जीवन कष्ट साध्य है। आक्सीजन की भी कमी है। ऐसे प्रदेश और इससे ऊपर जो लोग रहते हैं उनका साहस ही समझना चाहिये। देश की सीमा-रक्षा मे रहने वाले सैनिको को भी धन्य है।

और ऊँचाई पर

मुनि श्री का यह मगल-विहार वद्रीनाथ और उससे ऊपर भारत की सीमा माणागाँव तक ही सीमित न रहा। वे आज मध्याह्नोपरान्त १२३०० फुट की ऊँचाई तक भी गये। ये स्थान 'चरणपादुका' से ऊपर नील पर्वत की प्रभावशाली वहुत ऊँचाई पर है। यहाँ वरफ का अपूर्व भण्डार है। चढाई हो। क्षणकाल के लिये ...यो को पीडित न करे और ...गवान का धर्मचक्र निरन्तर प्रसा-

१ श्री मज्जिनस्य जगदीशवरताध्वजस्य। मीनध्वजा...
तन्न्यास दर्शनजनागमनध्वजस्य। चारोपण ...

अच्छे तन्दुरुस्त नवयुवक भी चढ़ने में हिम्मत हार जायें। इस यात्रा में मुनि श्री के सेवक श्री दरी गोंडा पाटील व मेरठ के श्री राजेन्द्र कुमार और दिल्ली नावल्टी बाजार के श्री रमेशचन्द्र मुनि श्री के साथ चले थे किन्तु बाद के दोनों सज्जनों को बीच में ही लौटना पड़ा—वे चढ़ न सके। एक तो आक्सीजन की कमी दूसरे शीत का प्रकोप और चढ़ाई के प्रश्न उन्हें प्रश्न बनकर रह गये। यहां बड़ा सुहावना दृश्य था। ऊपर से आते हुए झरने का प्रवाह और बरफ की चमक मन को मोह रहे थे। ऐसा लगा—यहीं बैठा जाय। बस, क्या था? मुनि श्री आसन लगाकर ध्यानस्थ हो गये। आखिर, चरणपादुका जैसे पुनीत स्थल में ध्यान का योग बनना ही था। स्मरण रहे—जैन मान्यता में तीर्थंकरों और महापुरुषों की चरणपादुकाएं स्थापित करने की प्रथा बहुत प्राचीन है। अन्य धर्मों में ऐसी प्रथा दृष्टिगोचर नहीं होती। सम्मेदशिखर श्रीनगर आदि पर्वतों पर चरणपादुकाओं के माध्यम से ही भक्त अपने भावों को निर्मल करते हैं। प्राय. प्राचीन सभी जैन मन्दिरों में चरणपादुकाएं पाई जाती हैं। प्रतिष्ठा ग्रन्थों में आचार्यों ने चरणपादुकाएं स्थापित करने के स्पष्ट निर्देश दिये हैं और विधि भी बतलाई हैं।

मुनि श्री का ध्यान क्या था? मालूम होता था—वे शरीर में रहते हुए भी विदेह हो गये हों। परमात्मा से साक्षात्कार कर रहे हो। वे निश्चल और एकाग्र थे। वहां वचन और काय की क्रियाओं का पूर्ण निरोध तो था ही, साथ ही मुनि श्री का मन भी सिद्ध भक्ति में लीन था। मुनि श्री ध्यान से उठे तो बोले—'वे कैसे भाग्यशाली हैं, जिन्हें सुरम्य, स्वाभाविक शान्त, निर्जन-गिरि कन्दराओं में ध्यान का सौभाग्य प्राप्त है? यहां सिद्धभक्ति और मन की निर्मलता के सभी अमूल्य साधन उपलब्ध हैं। क्यों न यहां देर तक बैठा जाय।' पर वापिस आना आवश्यक था क्योंकि आज भी बद्रीनाथ मन्दिर में मुनि श्री को दूसरा प्रवचन करना था। वैसे मुनि श्री की इच्छा कैलाश और मान सरोवर तक भी जाने की थी परन्तु परिस्थिति वश वैसा न किया जा सका। मौसम भी अनुकूल न रहता यदि आगे लम्बा प्रोग्राम बनाया जाता। क्योंकि जून चालू हो गया था और बारिश व ठण्ड के बढ़ने का समय निकट था। मुनि श्री की चर्या बड़ी कठिन है। उसमें सभी साधन देखने पड़ते हैं।

'दिषु, पूर्वाचार्यगुणस्य नता वीक्ष्य।
दि प्रतिष्ठावत् प्रतिष्ठापयेत्॥'—नेमिचन्द्र
देश्य यथायुगम्।
विधिना न्यसेत्॥'—आशाधर

वर मुनि

रावल जी द्वारा आभार

धार्मिक दृष्टि से मन्दिर की व्यवस्था मे श्री रावल महोदय का सर्वोच्च स्थान है। विदाई से पूर्व तक उन्होने मुनि श्री की व्यवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखा। और मुनि श्री मे श्रद्धा-भक्ति प्रकट की। उन्होने कहा—मुझे वडी प्रसन्नता है कि मुनि श्री ने मेरी यहाँ पधारने की प्रार्थना को बडौत मे स्वीकार किया और अब साक्षात् यहाँ पधार कर हमे कृतार्थ किया। मुनि श्री का रावल महोदय ने वडा सन्मान किया और मुनि श्री ने उन्हे शुभाशीर्वाद व स्वाध्याय के लिये कुछ धार्मिक ग्रन्थ दिये, जिन्हे उन्होने साभार ग्रहण किया।

विदाई की वेला

दिनाक २ जून ७० को मुनि श्री ने वद्रीनाथ से श्री नगर की ओर विहार किया। विहार से पूर्व, वे यात्री जो मुनि श्री के कारण दिल्ली, सरधना, मेरठ, देहरादून, सहारनपुर, ऋषिकेश, जगाधरी, विकासनगर आदि स्थानो से आये थे, भी विदा हो गये। फीरोजाबाद के सुप्रसिद्ध सेठ छदामी लाल जी ने तो स्वास्थ्य ठीक न रहने के बावजूद भी कई दिन यहाँ विताए।

विदाई के समय का दृश्य भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। जब क्षेत्र के अधिकारी, विद्वान् और यात्री मुनि श्री को विदाई दे रहे थे, सभी के नेत्र भीगे-भीगे थे। वे मुख से मुनि विद्यानन्द महाराज की जय, विश्व धर्म की जय और अहिंसा धर्म की जय वोल रहे थे। वे मुनि श्री और सघ के लोगो को तव तक इकटक दृष्टि से देखते रहे, जब तक उनकी दृष्टि से ओझल न हो गये। विदाई के समय सघ के श्रावको ने पढा—

> 'क्षेम सर्वप्रजाना प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपाल ।
> काले-काले च वृष्टि वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
> दुर्भिक्ष चौर्यमारीक्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके ।
> जैनेन्द्र धर्मचक्र प्रसरतु सतत सर्व सौख्य-प्रदायि ॥'—

सपूर्ण प्रजाओ का क्षेम हो। वलवान और धार्मिक भूमिपति प्रभावशाली हो। मेघ समय-समय पर वर्षा करें। व्याधियो का नाश हो। क्षणकाल के लिये भी अकाल, चौर्य और महामारी ससार के प्राणियो को पीडित न करे और विश्व को सुख प्रदान करने वाला जिनेन्द्रभगवान का धर्मचक्र निरन्तर प्रसारित हो।

लौटते हुए

मुनि श्री की यात्रा के चरण पूर्ण होने पर उन्हें श्रीनगर पहुँचना था। वापिसी का मुख्य मार्ग वही रखा गया जिससे मुनि श्री गये थे। ठहरने के स्थानो मे जहाँ परिवर्तन हुए अथवा जो कोई उल्लेखनीय घटनाएँ हुई—उनका निर्देश मात्र देकर हम यात्रा वृत्तान्त का सकोच करना ही अभीष्ट समझते हैं क्योंकि चवित-चर्वण करने मे ग्रन्थ को वढाने के अतिरिक्त, अन्य लाभ नही।

लामवगड—यहाँ वद्रीनाथ मन्दिर के रैस्ट हाउस मे ठहरे और सहारनपुर के के० सी० जैन परिवार ने मुनि श्री को आहार दिया।

जोशीमठ—विरला धर्मशाला मे ठहरे। यहाँ वेद-वेदाग विद्यालय के अध्यापक श्री इन्दुप्रकाश उपाध्याय ने अन्य अनेक विद्वानो, मिलिट्री आफीसरो ने मुनि श्री से जैन धर्म विषयक अपनी जिज्ञासा शान्त की। रात्रि के समय ज्योतिर्मठ के शास्त्री श्री रामेश्वर जी सन्देश लाये कि स्वामी शकराचार्य जी दिन मे आपको आने के समाचारो को सुनकर प्रतीक्षा करते रहे परन्तु आपके न आने पर मजवूरी रही। मठ मे आपके आसन आदि की भी समुचित व्यवस्था की गई थी। (स्मरण रहे—मुनि श्री जोशीमठ मध्याह्नोत्तर मे देर से पहुँचे थे) यहाँ से दिल्ली के श्री सागर चन्द सपरिवार दिल्ली गये।

नन्द प्रयाग—इन्दौर के सेठ श्री राज कुमार सिह जी आदि कई सभ्रान्त परिवार आये और मुनि श्री से इन्दौर मे चतुर्मास करने की प्रार्थना की। वे मुनि श्री के निमित्त से ही वद्रीनाथ की ओर चले थे, पर विलम्व हो गई। सभी वद्रीनाथ चले गये।

कर्ण प्रयाग—मजिस्ट्रेट सा० सदल वल व अन्य मिलिट्री आफीसर व नगर के अनेक लोगो ने मुनि श्री से प्रवचन सुने और धर्मभक्त वन गये। मजिस्ट्रेट सा० वाद मे अन्य कई स्थानो पर आये। यहाँ श्रुतपचमी के दिन मुनि श्री के चतुर्मास-स्थान का निश्चय होना था। श्रीनगर के सम्भ्रान्त जैना-जैनो ने मुनि श्री से प्रार्थना की और नारियल चढाया। इस अवसर पर श्री कैलाश चन्द मन्त्री, जैन समाज सहारनपुर (जो वद्रीनाथ से सपरिवार साथ थे) तथा डॉ० खडेलवाल ने भी सक्षिप्त भाषणो मे मुनि श्री के गुण-गान किये। श्रुतपचमी पूजा भी की गई।

नागरासू—सहारनपुर की सौ० उषा, सौ० यशोदा, श्री जितेन्द्र जी व कु० उमा ने आहार व्यवस्था की (ये सव कोटद्वार से यात्रा मे चौके के साथ चल रहे थे) इसी समय इन्दौर से सेठ देवकुमार सिह जी सपरिवार आ

पहुँचे और आहार दान[1] के पुण्य मे उन्होंने भी भाग लिया। यहां बड़ौत के बाबू जियालाल जैसे रईस व ज्वालापुर के श्री भगवत प्रसाद जैन भी मुनि श्री के दर्शनार्थ आये।

रुद्र प्रयाग—यहां आते-आते मुनि श्री का स्वास्थ्य बिगड़ गया। पहाड़ी लम्बी यात्रा की थकान और श्रद्धा-भक्ति पूर्वक दाताओं द्वारा (ठण्डे प्रदेश मे सुरक्षा के ख्याल से) दिया गया गर्म पदार्थों का आहार मुनि श्री को गर्मी का कारण बन गया उन्हे बार-बार लघुशंका की बाधा होने लगी। जब बैठते तो बड़ी कठिनाई से दो-तीन बूंद मात्र पेशाब होती। बाद में तो लगातार खून ही पेशाब मे आया। फिर भी मुनि श्री ने साहस न छोड़ा और चलते रहे। यह पुण्य का प्रताप ही था कि उस रात तेज वर्षा हो जाने से मौसम ठण्डा हो गया और मुनि श्री की बाधा भी ठण्डी हो गई।

भट्टी सेरा—

'अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं,
सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जित,
कृत प्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति॥

मुनि श्री, डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, श्री भगवत प्रसाद ज्वालापुर वाले और श्री जितेन्द्र कुमार जैन रुद्र प्रयाग से चले आ रहे थे। मार्ग मे जगह-जगह सरकारी कर्मचारी निर्माण के प्रसंग में पहाड़ को बारूद दाग कर तोड़ रहे थे; हमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ी, कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय। आते-आते जब सब भट्टी सेरा के कुछ पूर्व मे थे—विश्राम करने एक स्थान छाती खाल (३१०० फीट) पर बैठ गये। थोड़ी देर मे ऊपर से गड़गड़ाहट की आवाज आई और मुनि श्री की दृष्टि उपर गई। उन्होने देखा ऊपर से सैकड़ो मन की भारी शिला नीचे की ओर चली आ रही है। उन्होने सबको सावधान और सुरक्षित होने को कहा। सब प्राण बचाकर भागे। बाद मे देखा कि वह भारी शिला वहीं पर गिरी जहाँ हम सब आनन्द से बैठे थे। बच गये।[2]

मुनि श्री तथा श्रावक-श्राविकाएं दिनांक १२ जून ७० को श्रीनगर सानन्द आ पहुँचे और काली कमली-धर्मशाला मे ठहरे। बाद मे जिन्हे जहाँ जाना अभीष्ट था—सुविधानुसार चले गये।

---

१ 'एवं व्रतस्थितोभक्त्या सप्त क्षेत्र्यां धनं वपन्।
दयया चाति दीनेषु महाश्रावक उच्यते॥'—

२ मृत्योर्बिभेषि किं मूढ, भीतं मुंचति नो यम।
अजातं नैव गृह्णाति, कुरुयत्नमजन्मनि॥'

शान्तिप्रसाद जैन,
११, क्लाइव रो,
कलकत्ता–१
१७ जून १६७०

मान्य मुनि महाराज,

सादर नमोऽस्तु ।

आपकी यात्रा का समाचार मिल रहा था । आपका ८ जून का पत्र प्राप्त कर बहुत प्रसन्नता हुई । आपकी बद्रीनाथ की यात्रा सानन्द हो गयी । आप चातुर्मास में श्रीनगर रहना चाहते है सो आप इसका निश्चय श्रीनगर जा कर ही करे । यदि वहा का मौसम अनुकूल नही हो तो चातुर्मास शुरू होने से पहले आपको नजीबाबाद पहुचने में कोई कठिनाई नही होगी । वहा पर भी सब सेवायें आपको उपलब्ध रहेगी ।

रमा भी आपको सादर नमस्कार भेजती है । सब सघ वालो से सादर जय जिनेन्द्र । मेरे लिए और कोई भी सेवा हो तो लिख दीजियेगा ।

आपका
शान्ति प्रसाद जैन

श्री दिगम्बर जैन समाज

सहारनपुर

दिनाङ्क १५-६-१६७०

आदरणीय पडित जी,

सादर जय जिनेन्द्र ।

प्रात स्मरणीय तीर्थंकरो, आचार्यों—स्वामी समतभद्र अकलक प्रभृति श्रमण दिगम्बर जैन मुनियो ने जिस धर्म को दिग्दिगन्त मे व्याप्त किया और जो मध्यावधि के हजारो वर्ष हिमालयवर्ती प्रदेश मे विस्मृत पडा रहा उसे प्रकाश मे लाने का श्रेय पूज्य १०८ मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज को है। बद्रीनाथ, भारत सीमावर्ती माणागाव और उससे भी ऊपर नील पर्वत की ओर हिम-प्रदेश में दूर-दूर तक मुनि श्री का मगल-विहार, ज्ञान सर्वधिनी सभा और बद्री विशाल मन्दिर मे प्रवचन उनके अभूतपूर्व साहस और उनकी जिनधर्म प्रचार भावना को मूर्त रूप देने के बेजोड उदाहरण हैं। यहा की समाज ने जब समाचार जाने वह हर्ष से गद्गद् हो उठी। मुनि श्री को समाज के समस्त भाइयो की नमोस्तु कहिये और समाज के उक्त उद्गार उन तक पहुँचा दीजिये।

हम यहा सानन्द आ पहुँचे थे। वहा के समाचार देते रहियेगा। सेवा कार्य हो तो वह भी लिखियेगा। पूज्य श्री का स्वास्थ्य ठीक होगा। धन्यवाद,

भवदीय,
कैलाश चन्द जैन
मत्री,
श्री दिगम्बर जैन समाज,
सहारनपुर (उ०प्र०)

श्री हरिः

।। न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।।

वद्रीनाथ
दि० १२-६-७०

श्री शास्त्री जी, सस्नेह सादर जय धर्म ।

परम पूज्य मुनि श्री विद्यानन्द जी महाराज का चातुर्मास-श्रीनगर निवास समाप्ति पर होगा । हमारी ओर से मुनि श्री को आदराजलि अर्पण कीजिये । सौभाग्य से उत्तराखण्ड के लिये एक चिरस्मरणीय ऐतिहासिक सत्य का लाभ हो गया है, जब उसके अचल में एक जैन महामुनि ने चातुर्मास के निमित्त निवास किया है ।

हम मुनि श्री के समन्वयवादी, सर्वधर्मसहिष्णु विचार और अन्तर्वाह्य-नवनीत-स्थिति से बहुत प्रभावित है । युग-युग मे पुण्य भू भारत के कोने-कोने मे ऐसे प्रभावित महापुरुषो का सदेश पहुँचकर जन-जन को प्रभावित करता आया भी है । विशेष क्षेम ।

पुन मुनि श्री का दर्शनेच्छु

सत्यनारायण शास्त्री 'बाबुलकर'
संचालक—महाराष्ट्र सेवासंघ, बद्रीनाथ

टिहरी-गढ़वाल की ओर

अभी चतुर्मास प्रारम्भ होने मे देर थी। वह १० जुलाई ७० को स्थापित होना था। टिहरी के श्रावको ने मुनि श्री से टिहरी चलने की प्रार्थना की। यद्यपि मुनि श्री दूरस्थ पहाडी प्रदेश की यात्रा मे पर्याप्त थक गये थे। उन्हे विश्राम की आवश्यकता थी फिर भी श्रावको के आग्रह को टालना उचित न समझा। सोचा—इधर कोई पहुँचता भी तो नही है। आखिर धर्म की प्रभावना और स्थितिकरण तो होना ही चाहिये। बस, उन्होने स्वीकृति दे दी और दिनाक ४–७–७० के प्रात टिहरी की ओर चल पडे। मार्ग मे मुनि श्री का कीर्तिनगर मे भव्य स्वागत हुआ और ८ मील चलकर डागचौरा डाक बगले मे ठहरे। साथ मे लेखक, श्री दरी जी, श्री राजगौडा पाटील, श्री प० बाहुवली पार्श्वनाथ उपाध्याय और अनेक श्रावक थे। रात्रि भर विश्राम कर अगले दिन १५ मील दूर चलकर ४००० फुट की ऊँचाई पर पौखाल डाक बगले मे ठहरे। स्थान मनोरम, चीड के वृक्षो से व्याप्त है। वायु के वेग से जब वृक्षो के पत्ते हिलते हैं तब उनका शब्द ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई बाजा बजा रहा हो। बगले मे रात्रि भर विश्राम किया और अगले दिन प्रात टिहरी की ओर प्रस्थान कर गये।

टिहरी भारत के प्राचीन राज्यो मे से एक है। और स्वतन्त्रता के बाद उसका विलयन हो गया। कहते हैं बद्रीनाथ मन्दिर के प्रबन्ध आदि से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह नगर भागीरथी और भिलगना के सगम पर आबाद है। भागीरथी नदी का 'हिमालय मे जैन-सस्कृति' से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जैन मान्यतानुसार—जैन धर्मानुयायी चक्रवर्ती-सगर के उत्तराधिकारी राजा भगीरथ को जब ससार के भोगो से विरक्ति हुई तब उन्होने अपने सुयोग्य पुत्र वरदत्त को राज्याधिकार सौंप स्वय शिवगुप्त नामक मुनिराज से दैगम्बरी दीक्षा गृहण की।[1] इस दीक्षा काल मे भगीरथ मुनिराज ने इस नदी

१—'वरदत्ताय दत्त्वात्मराज्यलक्ष्मी भगीरथ ॥
कैलाशपवते दीक्षां शिवगुप्त महामुने ।
आदाय प्रतिमायोगधार्य भूत्स्वर्धुनी तटे ॥'—
सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरभिषेचनात् ।
क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गङ्गाया सगमे सति ॥
तदा प्रभृति तीर्थत्व गङ्गाप्यस्मिन्नुपागता ।
कृत्वोत्कृष्ट तपोगङ्गातटेऽसौ निर्वृति गत ॥'—
—जैनाचार्य गुणभद्र, उत्तर पुराण ४८/१३८–१४१

के तट पर स्वाध्याय-मनन-चिन्तन और ध्यान मे पर्याप्त काल बिताया। मुनि श्री की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और उनके कारण ही नदी का नाम भागीरथी प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर इसका गङ्गा नाम हुआ है। इसके जल से जिनाभिषेक आदि क्रियाएँ सम्पन्न होती रही है। ये ही कारण है कि जिनसे यह क्षेत्र, यह नदी और यह भूमि तीर्थत्व को प्राप्त हुई। इनको प्रत्यक्ष देखना भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से भी उपयोगी है। डॉ० सम्पूर्णानन्द जी के शब्दो मे—

'हिमालय के उत्तुग शिखर, पर्वतो के वक्ष को चीरती हुई भागीरथी की हिमशीतल धारा, सागर की गगनचुम्बी तरगे, सूर्य की प्रखरता को कुण्ठित करने वाली वनराजियाँ, बालुका के विशाल समुद्र के समान फैली मरुभूमि, अन्न के लहलहाते खेत और केसर की क्यारियाँ इनको प्रत्यक्ष देखे बिना भारत का पूरा ज्ञान कहाँ सम्भव है ?' मुनि श्री टिहरी ६ दिन ठहरे। इस काल मे मुनि श्री ने भागीरथी तट को ध्यान स्थल बनाया। प्रवचन आदि से रिक्त समय का अधिकाश भाग भी नदी तट पर ही व्यतीत होता रहा। यहाँ परम शान्ति का अनुभव होता रहा।

टिहरी नगर सुन्दर और जनसख्या से भरपूर है। यहाँ के श्रावको ने मीलो पूर्व से मुनि श्री का भव्य स्वागत किया। नगर सजाया और प्रवचन मडप का व्यवस्थित ढग से निर्माण किया। यहाँ मुनि श्री ६ दिन रहे और अनेको प्रवचन किये। जनता मुनि श्री के प्रवचनो से तृप्त नही हो पा रही थी। उसका सभा मे से उठने को मन नही करता था। सैकडो की सख्या मे लोग मुनि श्री के दर्शनो को उनके निवास पर भीड लगाये रहते थे। यहाँ खूब धर्म प्रभावना हुई और जैनो मे जैनत्व के अकुर जाग्रत व दृढ हुए। दिनाक ११ को आगे के लिए विहार किया।

चन्द्रवदनी-सिद्धपीठ

टिहरी से १८ मील दूर समुद्र तल से ८१३७ फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ एक सिद्धपीठ है जो 'चन्द्रवदनी' के नाम से प्रसिद्ध है। पहिले यहाँ वर्ष मे दस मास भैसो और बकरो की बलि होती थी। चैत्र और आश्विन मे बलि का बडा महत्व माना जाता था। परन्तु दो वर्षों से यह घृणित प्रथा यहाँ से पूर्ण विराम पा गई है और क्षेत्र अहिंसा का धाम बन गया है। यहाँ के सामाजिक कार्यकर्त्ता जो यहाँ बाहर से आकर बसे है, श्री डॉ० मन्मथन मुनि श्री के समीप कई स्थानो पर कई बार आये और इस स्थान और यहाँ

की वलि प्रथा-वन्दी का वर्णन करते रहे। उन्होने कहा 'जैन धर्म तो अहिंसक धर्म है और 'अहिंसा परमोधर्म' का प्रचार इसी के तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी ने किया। हमारी प्रार्थना है कि आप इस क्षेत्र पर पधार कर आशीर्वाद दें कि यहाँ सदा ही अहिंसा की प्रवृत्ति बनी रहे।' मुनि श्री ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

जैसा कि हमे मार्ग मे आभास मिल चुका था—यह स्थान अत्यन्त मनोरम निकला। यहाँ मौसम हर समय नवीन रूप धारण करता रहता है। कभी धूप कभी वर्षा तो कभी घोर कुहरा। यहाँ रात भर ठहरे। अगले दिन प्रवचन दिया। लोगो ने मुनि श्री का स्वागत किया। मुनि श्री ने निरपराध पशुओ पर दयाभाव के महत्व को वतलाया। उन्होने कहा ज्ञानी और दयालु पुरुष तो अपराधी तक को क्षमा कर देते हैं—निरपराधियो[1] की बात तो छोडिये—आदि। मुनि श्री के प्रवचन से लोगो की अहिंसा के प्रति और गाढ श्रद्धा हो गई—उनके सब सशय भी दूर हो गये। ठीक ही है—

'जग सुहित कर, सब अहित हर, श्रुति-सुखद सब सशय हरैं।
भ्रम रोग हर जिनके वचन, मुख चन्द्र तै अमृत झरैं॥'—

डॉ० मन्मथन तथा अन्य लोगो ने सघ की पूरी-पूरी व्यवस्था की। यहाँ श्री प० बाहुवलि पार्श्वनाथ उपाध्याय अस्वस्थ्यता का अनुभव करने लगे अत. शीघ्र लौटना पडा। श्रीनगर के श्री मोहनलाल जैन और श्री योगीन्द्र हमारे साथ रहे।

इधर चैत्र मास मे 'बुरॉस' का फूल बहुतायत से होता है। उस समय की छटा ही निराली होती है। इसके अतिरिक्त निम्न पेड भी इधर पाये जाते हैं—चीड, देवदारु, बाझ, ममीरा, भेदा, महाभेदा, श्वेतमूसली, सालिम-मिश्री, नेत्रज्योति और रत्नज्योति। वैसे हिमालय वनस्पति का भण्डार है। हम लोग यहाँ से चलकर रात्रि में डागचौरा डाक वगले मे विश्राम करते हुए, दिनाक १२ जुलाई ७० को 'श्रीनगर' वापिस आ पहुँचे। यहाँ मुनि श्री का चातुर्मास होना था।

---

१ 'मृगमीनसज्जनानां, तृणजलसतोषविहित वृत्तीनाम्।
लुब्धक धीवर पिशुना, निष्कारण वैरिणो जगति॥' —नीतिशतक

कैप्टिन सेठ सर भागचन्द सोनी

सेठ मूलचन्द सोनी मार्ग,
अनूप चौक, अजमेर
१-७ ७०

श्रीमद् परम पूज्य १०८ मुनिराज
श्री विद्यानन्द जी महाराज के
पुनीत चरणो मे सविनय नमोस्तु।

नवभारत टायम्स आदि दैनिक पत्रो द्वारा भी महती धर्म-प्रभावना के समाचार ज्ञातकर हार्दिक प्रसन्नता होती है। पर्वतीय क्षेत्र में दिगम्बर मुनि विहार इन दशाब्दियो मे नही हुआ, आपके वहा पधारने तथा धर्मोपदेश से नि सन्देह अद्भुत धर्मोद्योत हुआ है, आपका दिव्य उपदेश श्रवणकर भव्य जीव आत्म कल्याण मे रत होगे, ऐसा विश्वास है।

हिमालय की उपत्यकाओ मे आपका मंगल विहार इस शताब्दि की महत्वपूर्ण उल्लेखनीय घटना है। जैन धर्म की दिव्य देशना का यह सुअवसर इतिहास मे उल्लेखनीय रहेगा, आपके उधर विहार की महिमा अभूतपूर्व है और इससे जैन धर्म की अद्वितीय प्रभावना हुई है।

आपके पावन दर्शनो की तीव्र उत्कठा है, लेकिन लौकिक कार्यों मे अत्यधिक व्यस्तता के कारण जव योग होगा तभी वह पुण्य घडी प्राप्त होगी। आपके आशीर्वाद से सव कुशल हैं, मेरी व मेरे समस्त परिवार की ओर से विनयपूर्वक नमोस्तु विदित हो।

आपके द्वारा जिन-धर्म की अनन्य प्रभावना होती रहे, यही भावना है।

विनीत—
चरण सेवक
भागचन्द सोनी

उत्तराखण्ड के लिये वरदान

स्थान—बदरीनाथ
दिनाक १५-७-७०

श्रीयुत् अध्यक्ष महोदय,

श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, श्रीनगर (गढवाल)

हमारा सौभाग्य है कि श्री १०८ मुनि विद्यानन्द महाराज का पावन-चातुर्मास श्रीनगर मे होना निश्चित हो चुका है। महाराज श्री के बदरिकाश्रम निवास मे ज्ञानसम्वर्धिनी सभा द्वारा सपादित स्वागतायोजन मे निवेदन किया गया था कि समस्त भारतवर्ष पर तीर्थंकरो एवं महामुनियो की सदैव ही बडी कृपा रही है। मुनि श्री का श्री नगर-निवास उत्तराखण्ड के लिये हम वरदान समझ रहे हैं। इस शुभ अवसर पर हम अपने श्रद्धा-सुमन आपके द्वारा श्री चरणो मे पहुँचा रहे है।

विनीत—
सत्यनारायण शास्त्री, वाबुलकर
(सचालक–ज्ञानसवर्धिनी सभा, बदरीनाथ)
हिमालय

श्रीनगर-गढ़वाल और चातुर्मास—

'अलकनन्दोत्तरे तीरे क्षेत्रे 'श्री' सञ्ज्ञके शुभे'—

—स्कन्दपुराण, के० खं० ११५।२४

मुनि श्री का सन् १९७० का वर्षा योग श्रीनगर मे होना था। यह नगर गढवाल क्षेत्रान्तर्गत सुरम्य पर्वतीय प्रदेश मे पर्वतो से वेष्टित अलकनन्दा तीर पर बसा है। हिन्दूमान्यतानुसार यहाँ महापुरुष राम ने आराधना की, महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' ग्रन्थ की रचना की और यही पाण्डवो ने आतिथ्य ग्रहण किया। प्राचीनकाल मे यह सुबाहु की राजधानी भी रही। कालान्तर मे यह श्रीनगर सन् १३७५ मे राजा अजयपाल की राजधानी बना। दिल्ली की भाँति इस नगर का इतिहास भी अनेको बार बना और बिगडा। दिल्ली १४ बार बसाई गई तो यह भी ११ बार बसाया गया, ऐसी किम्वदन्ती है। महाकवि भूषण ने इस नगर को अपनी कृतियो मे गौरवपूर्ण स्थान दिया है[1] और चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने इस नगर को 'ब्रह्मपुर' नाम से सबोधित किया है—जो सन् ६३४ मे यहाँ आया। वर्तमान श्री नगर सन् १८९४ की बिरही नदी की बाढ से ध्वस्त श्रीनगर का स्थानान्तरित और आधुनिक रूप है। लेकिन यहाँ आधुनिकता—नवीनता मे भी प्राचीनता और शान्ति व एकान्तता की झलक है। यह श्रीनगर मुनि और तपस्वियो की पुण्य स्थली है तथा यहाँ की स्थिति कश्मीर के श्रीनगर से सर्वथा भिन्न और विपरीत है। डॉ० सम्पूर्णानन्द के शब्दो मे—

'भारत मे और भी सुन्दर प्रदेश हैं। कश्मीर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये जगत मे विख्यात है। कश्मीर की तुलना यहाँ नही है परन्तु मेरी अनुभूति मे—सभव है दूसरो की प्रतीति कुछ और हो, कश्मीर मे प्रकृति शृङ्गार की ओर झुकाती है, इस क्षेत्र में शान्त-रस की ओर।'—

'इस भूमि से पदे-पदे हमारी पुरानी कथाओ और अनुश्रुतियो के झनकार उठते हैं, नदियो के पुलिनो से, पहाडो की चोटियो से, हमारा प्राचीन इतिहास बोलता है।'—

—'अलकनन्दा' मन्दाकिनी के दो तीर्थ—भूमिका।

---

१ 'श्रीनगर नयपाल जुमिला के छितिपाल, भेजत रिसाल चौरगढ़ कही बाज की।
मेवार ढुंढार मारवाड और बुन्देलखण्ड, झारखण्ड बाधो घनी चाकरी इलाज की॥'
—'मोरग जाहु कि जाहु कुमाऊँ श्रीनगरै कि कवित्त बनाये॥'

वर्षायोग—

वर्षायोग का विधान जीव-रक्षा, अध्ययन-मनन-चिन्तन और श्रावको के धर्म-स्थितिकरण आदि अमूल्य प्रयोजनो के निमित्त को लिये हुए है। ऐसे महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के लिये श्रीनगर जैसा उपयुक्त स्थान सर्वथा लाभकारी था और इसलिये मुनि श्री ने इसका चयन किया। चातुर्मास स्थापना का श्रीनगर मे एक प्रमुख कारण यह भी था कि श्रीनगर के मूलनिवासी श्री रमेशचन्द जैन, जो इन दिनो नव-भारत टाइम्स मे सह-सम्पादक है, वारम्वार मुनि श्री के निकट आते रहे और श्रीनगर के प्राचीन भव्य जिनालय व वहाँ के श्रावको की सहाय-योग्य स्थिति का चित्र मुनि श्री के समक्ष खीचते रहे। ये दिल्ली चतुर्मास के समय से ही मुनि श्री से इस क्षेत्र के उद्धार की प्रार्थना करते रहे। मुनि श्री कही हो, इन्हे शनिवार को पहुँचना और रविवार को मुनि श्री की सेवा मे रहना, इनका नियमित कार्यक्रम सा वन गया। मुनि श्री की भावना इधर आने की थी ही उनका ध्यान यहाँ की स्थिति पर गया और इस यात्रा के प्रसग को लेकर उन्होने यहाँ इस नगर मे वर्षायोग करना उचित समझा और ठहर गये।

मुनि श्री के हिमालय प्रदेश मे विहार से पूर्व अनेको धर्म परायण लोगो तक ने इसे साहस-कार्य तो वतलाया ही। साथ ही कतिपय लोगो ने यहाँ तक कहा कि इधर मुनिचर्या सर्वथा दु साध्य है। पर मुनि श्री ने सोचा—'वडे और सम्पन्न नगरो मे तो सभी जाते हैं और वहाँ जाना—रहना सभी को साधारण सा वन गया है। हमे तो वहाँ जाना चाहिये जहाँ (शताब्दियो) से जैनधर्म का जागरण सुप्त पडा है और जहाँ के जिनालय और जैनी सोए पडे हैं—उनकी सस्कृति लुप्त हो रही है।' हमे लिखते हुए गौरव का अनुभव हो रहा है कि उक्त भावना के कारण ही मुनि श्री इधर धर्म प्रभावना करने मे सफल हुए। इसे हम यूँ कह सकते हैं—'आदिनाथ ने कैलाश से, महावीर स्वामी ने विपुलाचल से भव्य जीवो को जो देशना दी। उस देशना को मुनि श्री विद्यानन्द ने हिमालय के कोने-कोने मे फैला दिया—उन्हे धन्य है।'—अस्तु।

शास्त्रों के विधानानुसार, मुनि श्री ने श्रीनगर मे वर्षायोग की स्थापना आषाढ शुक्ला चतुर्दशी तदनुसार दिनाक १७ जुलाई ७० को की। तथाहि—

'ततश्चतुर्दशी पूर्वरात्रे सिद्धमुनिस्तुती—
चतुर्दिक्षुपरीत्याश्चैत्यभक्तीर्गुरुस्तुतिम्॥'
अनगारधर्मामृत ६।६६

इस अवसर पर श्रीनगर सभा मण्डप में स्थानीय लोगो के अतिरिक्त वाहर के दूर-दूर स्थानो के श्रावक-श्राविकाएँ, सैकडो की सख्या मे सम्मिलित थे। मुनि श्री द्वारा पठित सिद्ध भक्ति, चैत्य-भक्ति और गुरुभक्ति को लोगो ने वडे ध्यान से सुना और समस्त विधि का अवलोकन भी किया। इस अवसर पर मुनि श्री ने एक सक्षिप्त प्रवचन भी किया। उन्होने कहा—

'चातुर्मास मुनि और गृहस्थ दोनो के लिये श्रेयस्कर है। किसी समय लोग वर्षाकाल मे उद्योग-व्यापार स्थगित कर देते थे और त्यागियो के चातुर्मास सयोग का, सहवास का लाभ उठाते थे। वर्ष के आठ महीने व्यवसाय और इन चार महीनो मे धर्म ध्यान उनका नियम था। वैसे विचारने पर इस वात मे औचित्य है कि यदि अर्थार्जिन और धर्माजन मे वर्ष का आधा-आधा सविभाग नही कर सको तो दो भाग धनार्जन मे और एक भाग तो धर्मार्जन मे लगाओ।[1] मोदक मधुर है, इसलिये क्या रात दिन कोई थाली लगाकर वैठता है? धन उपार्जन लोक जीवन के लिये उपयोगी है, तो क्या वारहो महीने उसी मे अपने को परोसते रहना उचित है? कुछ समय यदि पाचन क्रिया को विश्राम नही देंगे तो अजीर्ण होकर विष हो जायगा। चातुर्मास मे विश्राम लेना उपवास के समान है, जो आगे के लिये अधिक स्फूर्ति प्रेरणा तथा आरोग्य देता है।'

'चातुर्मास हमारी सास्कृतिक साधना परम्परा का अग है। अतीत के अज्ञातकाल से मुनि वर्षायोग धारण करते आये हैं। इस परम्परा के उद्देश्यो को अमर रखने मे चतुर्विध सघ को अपना-अपना कर्तव्य पालन करना श्रेयस्कर है।'

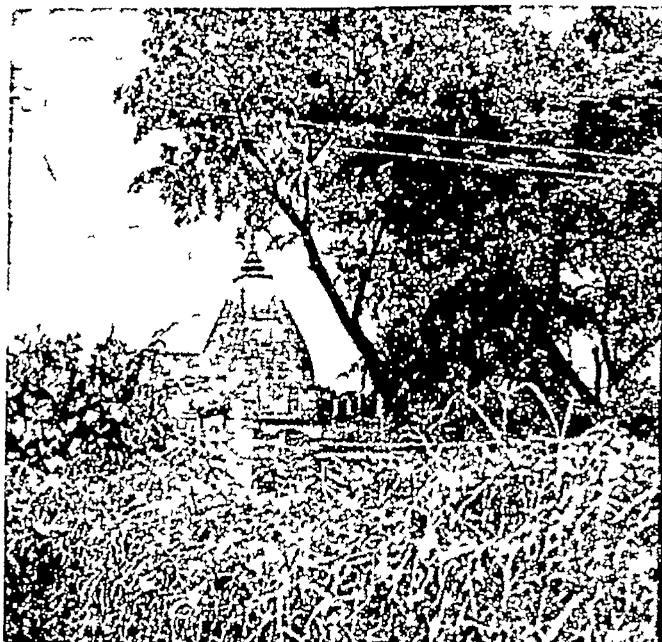
चातुर्मास स्थापना के प्रारम्भ मे श्री माधवदास जयपुर, श्री घनश्याम दास दिल्ली आदि ने पूजा-पाठ किया। इसी अवसर पर श्री ला० जयप्रसाद जैन जगाधरी की अध्यक्षता मे अ० भा० दि० जैन परिषद् की विशेष वैठक भी सम्पन्न हुई। इसमें मेरठ के धर्मनिष्ठ श्री सुकमालचद जैन मत्री-परिषद् व राजेन्द्र कुमार जैन सम्पादक वीर आदि ने पूरा पूरा योग दिया। श्रीनगर की स्थानीय समाज ने आगन्तुक अतिथियो के खान-पान, रहन-सहन आदि की पूरी व्यवस्था की। सभवत यहाँ के लोगो को यह प्रथम अवसर था जो वे समाज-साधर्मियो की सेवा का पुण्यलाभ ले सके।

---

१ 'धर्मस्य ह्यापवर्गस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते। नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामोलाभाय हिस्मृत ॥' —भागवत प्र० स्कन्ध २।९

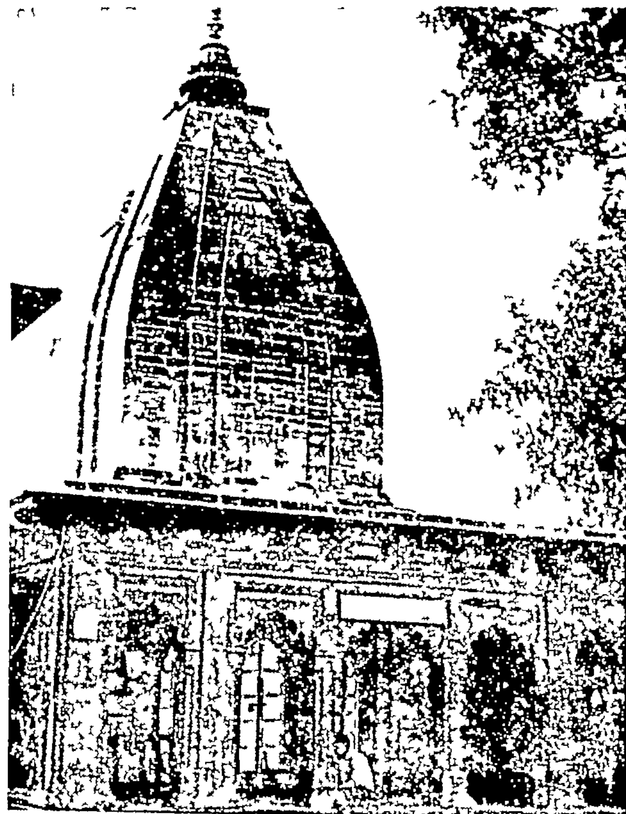
श्रीनगर जैन मन्दिर

तब



मुनि श्री के पहुँचने से पूर्व का दृश्य

अब



मुनि श्री के चरणारविन्द पडने के बाद

६, सरदार पटेल मार्ग,
नई दिल्ली-११
६-८-७०

श्रद्धेय श्री मुनि विद्यानन्द जी महाराज,

नमोऽस्तु ।

बद्रीनाथ से लिखा आपका आशीर्वाद स्वरूप पत्र मुझे मिल गया था, कृतज्ञ हू । साहू जी और मैं सपरिवार कलकत्ता से अब यहाँ दिल्ली आ गए हैं । आपकी बद्रीनाथ यात्रा सब प्रकार से सानन्द और सफल सम्पन्न हुई इस समाचार से हम सब बहुत प्रसन्न है । **निस्सन्देह आपकी इस यात्रा के फलस्वरूप धार्मिक, सास्कृतिक और साहित्यिक मूल्य की अनेक जानकारी प्रकाश मे आयेंगी और धर्म प्रभावना हुई है और आगे होगी ।** जब आपके दर्शनो का सौभाग्य होगा तब सब समाचार प्रत्यक्ष प्राप्त होगे ।

पिछले दिनो अलकनन्दा की बाढ के कारण जो विनाशकारी दृश्य उस क्षेत्र मे उपस्थित हुए उनके समाचारो से बहुत चिन्ता रही, आशा है आप सघ सहित निर्विघ्न और सानन्द रहे होगे ।

आपके आशीर्वाद से यहाँ सब कुशल है ।

योग्य सेवा लिखें ।

विनीत
रमा जैन

अप्रिय मे भी प्रिय-प्रसंग

हिन्दू-पुराणो के आख्यानानुसार गगा को भागीरथ पाताल मे ले गये और शकर जी के अलक—वाल से उत्पत्ति के कारण इसका 'अलकनन्दा' नाम पडा। तथाहि—

'आराधितस्तदा तेन दत्तवानहमापगाम् ।
एक केश परित्यज्य दत्ता त्रिपथगा तश ॥
सग्रहीत्वा ततो गगा पाताले यत्र पूर्वजा ।
अलकनन्दा तदा नाम गङ्गाया प्रथम स्मृतम् ॥

व्यासकृत, पद्मपुराण ६/२३/१६-१७

शिवजी वोले—भागीरथ ने मेरी आराधना की और मैंने उन्हे अपना केश उखाड कर त्रिपथगा—गगा प्रदान की। वह (भागीरथ) गगा को अपने पूर्वजो के स्थान पाताल को ले गये, तव (वाल से उत्पत्ति के कारण) गगा का नाम अलकनन्दा हुआ। किम्वदन्ती ऐसी भी है कि इस नदी का उद्‌गम स्थान अलकापुरी होने के कारण अलकनन्दा नाम पडा। जो भी हो, नदी वास्तव मे वडी विकट है। हमे तो इसकी पाताल गामिनी और प्रलयकारिणी लीला के दर्शन तव हुए जव हम दिनाक २१–७–७० के प्रात श्रीनगर मे सोकर उठे। जहाँ हम ठहरे थे, नदी का किनारा था। जहा सीमित जल था वहा अव अथाह और दूर तक नदी का विस्तार हो चुका था। नदी खलखलाहट करती वेग से वही जा रही थी। जल के वेग ने वडे-वडे वृक्षो और पत्थरो तक को नही छोडा। न जाने कहा से ये सव वहते चले आ रहे थे। थोडी देर मे मालूम हुआ "वेलाकूची' ग्राम वह गया और कितनी ही वसें व ट्रक भी वह गये। सुना यह भी कि धन जन की वडी क्षति हुई है। गौना ताल के टूट जाने से विरही नदी मे वाढ आ गई और विरही के कारण अलकनन्दा उवल पडी।" मुनि श्री की कुशलता जानने के लिये दूर-दूर से तार और पत्र आने लगे— लोगो को चिन्ता हो गई।

स्मरण रहे 'वेलाकूची' वही स्थान है जहा का कार्यक्रम निश्चित होते हुए भी हमारे मुनिश्री वद्रीनाथ जाते और आते दोनो समयो मे नही ठहरे। उन्होंने कहा—'यह स्थान स्थायी और सुरक्षित नही दीखता—आगे वढो।' यहाँ हमने देखा कुछ टोकरी वुनने वालो ने कुछ झोपडियो मे अपना धन्धा कर रखा था। सघ के कुछ लोगो ने यहाँ से टोकरियाँ भी खरीदी। आज वेलाकूची

नही, वह और निकटवर्ती राजपथ दोनो इस प्रकार वह गये जैसे मानो पहिले कभी रहे ही न हो।

यह सब कुछ होते हुए भी हमारे सघ के किसी व्यक्ति और अन्य किसी भी श्रावक को कोई क्षति नही उठानी पडी और सब कुशल रहे। श्रीनगर मे भी किसी की हानि नही हुई। हाँ, आई० टी० आई० की विल्डिग, जो पर्याप्त नीचे और नदी के निकट स्थित है, मे पानी और वालू ने अपना साम्राज्य जमा लिया (जो वाद मे हटा दिया गया और विल्डिग सुरक्षित वच गई)।

हम सब मुनिश्री के प्रताप से सुरक्षित रहे। मुनिश्री का तो कहना ही क्या है? वे तो सम्यग्ज्ञानी और सम्यग्ध्यानी हैं। उन्हे भय कैसा! वे तो सभी अवस्थाओ मे निश्चल रहे और कहते रहे 'इस आत्मा को क्या भय? यह तो सदा अजर-अमर है।' ठीक ही है—

'अशनिस्वनघोषेण नगस्फोटरवेण च।
ऐरावण निनादेन सम्यग्ध्यानी न कम्पते।'

—योगवाशिष्ठ ५-६-४७

—सम्यग्ध्यानी जीव वज्र के घोरतम शब्द से, पर्वतस्फोट के शब्द से और ऐरावत हाथी की चिघाड से घवराते (कापते) नही हैं।

धीर व्यक्ति न भयवान होता है, न किसी प्रकार की विवशता अथवा दीनता को ग्रहण करता है। वह तो समभाव से, स्वस्थ मन से पर्वत के तुल्य मौनपूर्वक धीर रहता है। तथाहि—

'न विभेति न वादते वैवश्यं न च दीनताम्।
सम. स्वस्थमना मौनी धीरस्तिष्ठति शैलवत्॥'—

—योगवाशिष्ठ, ५-६३-५५

साधु और सम्यग्ध्यानी मे घनिष्ठ सम्वन्ध है। साधु पुरुष साधु इसीलिये है कि वह सम्यग्ध्यानी है। और सम्यग्ध्यानी पुरुप सम्यग्ध्यानी इसीलिये है कि वह साधु है। जो साधु नही वह सम्यग्ध्यानी नही और जो सम्यग्ध्यानी नही वह साधु नही। नीतिसार मे जहाँ साधु के गुणो का वर्णन किया गया है, वहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि साधु सर्वद्वन्द्व विनिर्मुक्त, विरक्त, मौनी और ध्यानी होता है।[1] हमारे मुनिश्री मे सभी गुण विद्यमान होने से उन्हे किसी प्रकार का भय

१ 'सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो व्याख्यानादि विवर्जयेत।
विरक्तो मौनवानध्यानी, साधुरित्यभिधीयते'—नीतिसार १७

विचलित न कर सका। प्रसगवश यहाँ ध्यान के सम्बन्ध मे भी कुछ लिख देना आवश्यक है।

'ध्यायत्यर्थाननेनेति ध्यान करण साधनम्।
ध्यायतीति चकर्तृत्व वाच्य स्वातंत्र्य सभवात्॥
भावमात्राभिधित्साया ध्यातिर्वाध्यानमुच्यते।
शक्ति भेदाज्ज्ञतत्त्वस्य युक्तमेकत्र तत् त्रयम्॥
यद्यपिज्ञानपर्यायो ध्यानाख्यो ध्येयगोचरः।
तथाप्येकाग्रसन्दृष्टो धत्ते बोधादिवान्यताम्॥'

—आ० जिनसेन, आदिपुराण २१/१३-१५

ध्यान की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की गई है। १–पदार्थों के स्वरूप का जिससे (जिस विधि से) चिन्तन किया जाय, वह ध्यान है। २–जो चिन्तन कर रहा है वह ध्यान है अथवा ३–ध्यान ही ध्यान है। यहाँ प्रथम निरुक्ति करण साधन से है उसमे ध्यान एक प्रक्रिया है जिससे आत्म-चिन्तन किया जा रहा है। इसमे ध्यान साधन है, आत्मस्वरूप विज्ञान साध्य है अत ध्यान और ध्येय मे भेद विवक्षा की गई है। द्वितीय निरुक्ति कर्तृसमाश्रित है। यहाँ ध्याता और ध्यान एक हैं अत साध्य-साधन मे अभेद विवक्षा की गई है। तृतीय निरुक्ति मे ध्यान क्रिया है। वह आत्मा के समस्त प्रदेशो मे चिन्तनरूपेण एकीभूत है। आत्मतत्त्व के प्रति स्वशक्ति भेद से ये तीनो ध्यान विधिया युक्त हैं। यद्यपि ध्येय (आत्मतत्त्व) को गोचर करने वाला ध्यान ज्ञान की ही पर्याय है तथापि एकत्र सदृष्ट होने से ज्ञान, दर्शन, वीर्य सुख रूप व्यवहार को भी धारण कर लेता है।

यद्यपि ध्यान, ज्ञान की पर्याय है तथापि ज्ञान और ध्यान मे साधन भूत होने से, 'मन-वचन-काय की क्रिया का एक ओर स्थिर होना भी ध्यान कह दिया जाता है। परन्तु ऐसा ध्यान सविकल्प ही होता है। यदि ध्याता के विकल्प शुभ होगे तो ध्यान शुभ और अशुभ होगे तो ध्यान अशुभ कहलायेगा। वे ध्यान विकल्पावस्था मे ही होते हैं। शास्त्रो मे जहाँ मन्त्रोच्चार[1] पूर्वक

१ पणतीस सोल छप्पण चदुदुगमेग च जवह झाएह।
परमेट्ठि वाचयाण अण्ण च गुरूवएसेण॥'—द्रव्यसग्रह

ध्यान का विधान है वहाँ सविकल्प ध्यान को शुभ बनाने की दृष्टि ही है। ऐसे ध्यान से पुण्य बध होता है। हमारे मुनिश्री कहते हैं कि—'वाचन से पाचन महान है।' सो यह ध्यान भी अध्ययन किये और सुने गये तत्त्व को पचाने के लिये कारण है। क्योकि हम आत्मा से सम्बन्ध रखने वाली जितनी भी देशना सुनते हैं यदि उसका शताश भी हमारे मनन-ध्यान-चिन्तन मे आ जाय तो हमारा कल्याण होता है—हम उस पर कार्य रूप मे चल भी सकते हैं। अत यह ध्यान ससारी जनो के उपयोग की वस्तु है।

इसके अतिरिक्त एक ध्यान निर्विकल्पक होता है, उसके भी अनेक भेद हैं। ऐसे ध्यान के विषय मे कहा गया है कि—

'मा चिट्ठय मा जपय या चितय किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पमि रओ इणमेव पर हवे झाण॥'

—द्रव्यसंग्रह (नेमिचन्द्राचार्य)

कुछ चेष्टा मत करो, कुछ मत वोलो, कुछ विचार मत करो। आत्मा-आत्मा मे ही लीन रहे वह ध्यान है। ऐसे ध्यान मे ध्याता की स्थिति का चित्रण करते हुए प० श्री दौलतराम जी कहते हैं—

'जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश कर्ता चेतना क्रिया तहाँ॥'

ऐसे उत्कृष्ट ध्यान के लिये कोई निश्चित आसन नही होता, वह तो आत्म-चिंतन के साथ चलता है। हमने देखा यात्रा के मध्य मुनिश्री यद्यपि आवश्यक क्रिया निर्वाह की दृष्टि से ध्यान मे बैठते रहे हो। परन्तु उनके ध्यान मे कई स्थानो पर तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वे चतुर्थकालीन ध्यान मुद्रा मे हो। सतपुली मे तो ऐसा हुआ कि मुनिश्री एक गुफा मे ध्यानस्थ हो गये उन्हे घण्टो वीत गये—बैठे ही रहे। हम तो इसे आश्चर्य ही समझते हैं जव कि लोग समय का वन्धन देखकर समय पर उठते और समय पर सामायिक को बैठते हैं।

आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि—ध्यान के प्रयोजन सिद्ध करने वाले पुरुष आसनो व मुद्रा का विकल्प नही करते। वे तो हर अवस्था मे ध्यान की सिद्धि करते हैं—

'देहावस्था पुनर्येव न स्याद् ध्यानोपरोधिनी।
तदवस्थो मुनिर्ध्यायेत् स्थित्वाऽसित्वाधिशय्य वा॥'

आचार्य जिनसेन, आदि पुराण २१-७५

—ध्यान के समय देह की स्थिति वैसी रखनी चाहिये जिससे ध्यान मे कोई बाधा उत्पन्न न हो। क्योकि मुख्य प्रयोजन ध्यान है। अत मुनि खडे होकर, बैठकर अथवा लेटकर भी ध्यान कर सकते हैं।

जिनालय और अतिथिभवन

"दृष्ट जिनेन्द्र भवन भवतापहारि—
भव्यात्मना विभव सभव भूरिहेतु ।
दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटी
नद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ॥"
—दृष्टाष्टक स्तोत्र १

—हे जिनेन्द्र। भव्यात्माओ के वैभव को प्रचुरता से समृद्ध करने वाले तथा ससार ताप का शमन करने वाले आपके मगल-भवन का (आज पुण्य योग से) दर्शन किया। हे प्रभो! दुग्ध, समुद्र फेन तथा श्वेत वृषभ के समान उज्जवल शिखर कोटि पर अनेक ध्वजाओ से शोभायमान आपका भवन दूर से ही दिखायी देता है।

जिनशासन मे जिनमन्दिर की अनुपम-महिमा का वर्णन मिलता है। यह धर्म का सर्वोत्तम उपकरण है। इसके आधार को पाकर अनेकानेक जीवो ने अपने अनन्तभवो के पापो को क्षणभर मे काट दिया। जिनमन्दिर की मूर्ति यदि तदाकार मात्र है तब भी वह हमारे भावो को आलोडित करती है—हमे आत्मरूप निरखने मे उसी भाँति सहाय करती है जिस भाँति मुख के देखने में दर्पण सहाय करता है। अतएव धर्म और धर्मात्माओ के लिए मन्दिर और मूर्ति परम आवश्यक सबल हैं।

वर्तमान श्रीनगर मे एक जिनमन्दिर है। जब पहिला श्रीनगर ध्वस्त हो गया तब यहाँ के श्रावको ने इस श्रीनगर मे नवीन जिनमन्दिर का निर्माण कराया। मन्दिर का विशाल चौक एव काफी जायजाद है। सब कुछ देखने से पता चलता है कि यहाँ के श्रावक बडे धर्म प्रेमी रहे होगे। पुराने लोगो का कहना है कि यहाँ जैनियो की बडी धाक थी। वे लोग नगर के गरीब-अमीर सबको साथ लेकर चलते थे, उनका ख्याल रखते थे और असहायो की पूरी सहायता करते थे। राजदरबार मे जैनियो का मान था—उनकी चलती थी। परन्तु समय का प्रभाव है कि आज सब कुछ विस्मृत सा हो गया— जैनी जैनत्व को भूल चले और मन्दिर की व्यवस्था भी भङ्ग हो गई।

जैसा कि पाठक '**मन्दिर तब और अब**' चित्रो से जानेंगे—मुनिश्री के

श्रीनगर पहुंचने के पूर्व जो मन्दिर कबूतरो, छिपकलियों, कीडो-मकोडो और घास-फूस से घिरा था वह बाद को मुनिश्री की कृपा से शुद्ध-स्वच्छ वातावरण मे परिवर्तित हो गया। जो भाई मन्दिर आने का नाम नही लेते थे—वहाँ कई-कई चक्कर लगाने लगे है। मुनिश्री के आशीर्वाद से एक सुन्दर उपयोगी **'नन्द्यावर्त अतिथि भवन'** का शिलान्यास श्री ला. प्रद्युम्नकुमार सहारनपुर के कर कमलो द्वारा हुआ है जिसका अधिकाश भाग बनकर तैयार है और काम चालू है। आशा है वह भी शीघ्र पूर्ण हो जायगा। मन्दिर के पत्थर, दीवारें शिखर आदि तो आज भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसी ने सांचे मे ढाल कर अभी रखे हो। पत्थरो की चित्रकारी मनमोहक और आश्चर्यकारी है। मन्दिर में तीन प्रतिबिम्ब हैं। एक मूलनायक तीर्थंकर वृषभदेव की और दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ की। पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा तो सातिशय, प्राचीन और भक्तो को अनुकूल फल देने वाली है ऐसी जनश्रुति भी है।

हम यह भी नही भूल सकते कि यहाँ बाहर के श्रावको ने मुनिश्री के निमित्त-आकार, मन्दिर एव धर्मशाला निर्माण मे सभी प्रकार का सहयोग दिया है और पुण्यार्जन किया है। कहा भी है—

'वापीकूपतडागेषु देवतायतनेषुच ।
जीर्णान्युद्धरेत्यस्तु पुण्यमष्टगुण भवेत् ॥'

अब ऐसा भी प्रयत्न चल रहा है कि शीघ्र ही यहाँ की वेदी प्रतिष्ठा कराई जाय। आशा है विधिवत् विधि-विधान सर्वसुखदायी रहेगा और समस्त दिगम्बर समाज इस पुण्य कार्य मे सहयोग देगा।

ऐसा प्रतीत होने लगा है कि यहाँ के जैन अब सजग हैं। वे और उनके परिवार के छोटे-बडे सभी धर्मवृक्ष की छाया मे आ गये हैं। श्री प० बाहुबली पार्श्वनाथ उपाध्याय ने उन्हे धर्म-शिक्षा मे, दैनिक आवश्यक क्रियाओ मे कई मास तक बडे प्रयत्न से शिक्षित भी किया है।

मुनिश्री के श्रीनगर चतुर्मास के अवसर पर यहाँ अनेको यात्री पधारे। लोग सोचते थे, इस दूरस्थ पवतीय प्रदेश मे कौन आने का साहस करेगा। परन्तु यह गौरव की बात है कि यहाँ चतुर्मास काल मे ३११ कारें, ५ बसें और लगभग ३–३॥ हजार यात्री मुनिश्री के दर्शनार्थ पहुँचे जिनसे धर्म सस्थाओ को लाभ हुआ। स्थानीय जैना-जैन लोगो ने कन्धे से कन्धा भिडाकर वर्षायोग के समय सभी धार्मिक कार्यों मे पूर्ण सहयोग दिया। आगामी व्यवस्था के लिये कमेटी बन गई है और अर्थ की व्यवस्था के लिये बैंक मे अकाउन्ट चालू हो गया है।

हम यहाँ यह लिखना भी कर्तव्य समझते हैं कि मुनिश्री के वर्षायोग तथा श्रीनगर निवास के अवसर पर सभी जन साधारण, चाहे वह किसी भी धर्म-सम्प्रदाय का क्यो न हो ? ने मुनिश्री के प्रवचनो से पूरा लाभ उठाया और सभी ने पूरा-पूरा सहयोग किया। मुनिश्री ने स्थानीय सस्कृत पाठशाला गर्ल्स इटर कालिज तथा अन्य सभी के प्रति अपने आशीर्वाद प्रदान किये। गर्ल्स कालिज की प्रिन्सिपल कु० झरनारानी घोष लगनशील, सेवाभावी और भद्र हैं। श्री जयदयाल अग्रवाल, श्री जगदीश प्रसाद अग्रवाल, जनसघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री नैथानी जी व श्री श्रियाश प्रसाद शाह ने अजैन होते हुए भी जैनत्व का परिचय दिया। सभी का सहयोग सराहनीय है। स्थानीय जैन-परिवारो ने धर्म मे अपना स्थितिकरण कर अपने को धन्य बनाया। मन्दिर की स्थिति दृढ हुई-**नन्द्यावर्त अतिथि भवन** का निर्माण हुआ यह बात भी बडे महत्त्व की है। स्थानीय जैन सस्थानो के सुचारुरीत्या सचालन के लिये जो समिति मुनिश्री के आशीर्वाद मे बनी वह इस प्रकार है—

१. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, अध्यक्ष
२ श्री सुखवीर प्रसाद जैन, उपाध्यक्ष
३. श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन, मन्त्री
४ श्री रतन लाल मेहता जैन, उपमत्री
५. श्री मोहनलाल जैन, कोषाध्यक्ष
६ श्री कृष्ण कुमार जैन, सदस्य
७ श्री रमेश चन्द जैन, सदस्य

उक्त सभी कार्य पूज्य मुनिश्री के आशीर्वाद से हुए और हिमालय मे दिगम्बरत्व की नीव आगामी काल को दृढ हुई, यह भाग्य ही है। मुनिश्री ने श्रीनगर वर्षायोग का विसर्जन दिनाक २९ अक्तूबर तदनुसार मिती कार्तिक बदी चतुर्दशी को सानन्द सपन्न किया। कहा भी है—

'शान्ति भक्ति च कुर्वाणैर्वर्षायोगस्तु गृह्यताम्।
ऊर्ज कृष्ण चतुर्दश्या पश्चाद्रात्रौ च मुच्यताम्॥'
अनगार धर्मामृत ९/६७

श्रीनगर से ऋषिकेश-हरद्वार की ओर

श्रीनगर गढवाल के चतुर्मास के बाद दिनाक ११ नवम्बर १९७० को मुनिश्री का मगल-विहार था। विदाई से पूर्व नगरवासियो ने विशाल सभा का आयोजन किया। श्री वृषभदेव दिगम्बर जैन मन्दिर का प्रागण नर-नारियो से खचाखच भरा हुआ था। सभी लोगो के नयन भरे हुए थे। प्रमुख श्री जय-दयालमल, श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाल ने नगरवासियो की ओर से और श्री रमेश चन्द जैन—नवभारत टाइम्स ने श्रीनगर जैन समाज की ओर से

मुनिश्री का गुणगान व आभार प्रदर्शित किया। इस अवसर पर मुनि श्री ने सभी को धर्म के प्रति रुचि रखने और कर्तव्यनिष्ठ रहने का आशीर्वाद दिया। मुनिश्री के प्रवचन मे सकेत था कि नगर के सभी लोग धर्म के साधन श्री जिनमन्दिर की सेवा मे तत्पर रहे ।

सघ गाजे-वाजे के साथ कीर्तिनगर की ओर विहार कर गया। सैकडो व्यक्ति कीर्तिनगर तक साथ चले। कीर्तिनगर डाकबँगले मे रात्रि-विश्राम किया और आहार के पश्चात् सायकाल तक देवप्रयाग पहुँच गये। मार्ग मे आहार आदि की व्यवस्था श्री शिखर चन्द रानी मिल मेरठ, श्री सतीश जैन ज्वालापुर श्री रमेश चन्द जैन देहरादून और श्री सागर चन्द व ब्रिजकिशोर दिल्ली वालो के परिवार के सदस्यो ने की।

'देव प्रयाग' अलकनन्दा-भागीरथी का सगम स्थान है। जैसे ही मुनिश्री के यहाँ आने के समाचार नगर मे पहुँचे नगर के प्रमुख अजैन विद्वानो और नागरिको ने ६ किलोमीटर पहिले पहुँचकर मुनिश्री का स्वागत किया और वे साथ-साथ पैदल चले। यहाँ मुनिश्री पी डब्लू डी के डाकबँगले मे ठहरे। अगले दिन उन्होने यहाँ की वेधशाला को देखा। वेधशाला मे ज्योतिप सम्बन्धी अनेको महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का सग्रह भी है। ज्योतिष सम्बन्धी अनेको यन्त्र, जिनसे ग्रहो की गति आदि के परिज्ञान मे सहायता मिलती है, भी यहाँ देखने को मिले। दिनाक १३ नवम्बर को यहाँ के राममन्दिर मे मुनिश्री ने प्रवचन किया। लोग श्रमण दिगम्बर मुनि की वाणी से प्रभावित हुए और धन्य, धन्य कहते रहे। सभा का प्रारम्भ व समापन श्री मुरलीधर शास्त्री के वक्तव्यो से हुआ।

देव प्रयाग मे मुनिश्री ने झूले के पुल पर खडे होकर सगम स्थान को भी देखा। भागीरथी नदी का जल देखकर उन्हे 'मुनि-मन सम उज्जवल नीर' का स्मरण हो आया। जल मे जैसी निर्मलता थी वैसी निर्मलता यदि आत्मा में हो जाय तो आत्मा को परमात्मा बनने में देर न लगे। थोडी देर को तो सभी श्रावक भी सोचते रहे कि निर्मल जल दर्शन मात्र ने किस प्रकार उनका मन जीत लिया है। यहाँ यह अनुभव हुआ कि वाह्य पदार्थों का मन पर अवश्य प्रभाव पडता है। जो लोग निमित्त को नही मानते वे ज्ञान दृष्टि से हास्य के पात्र हैं आदि ।

साकनीधार

मुनि श्री दिनाक १३ नवम्बर को आहार के पश्चात् देवप्रयाग से विहार कर 'साकनीधार' पहुँचे। यह पूरा-पूरा जगल ही था। केवल डाक बँगला और

चौकीदार। मुनि श्री के विश्राम को यहाँ थोडी सी जगह मिल गई थी साथ के अधिकाश साथी वाहर के वरामदो और सहन मे ही सोये। यहाँ सोने से पूर्व एक वात यह हुई कि यहाँ के चौकीदार ने हमे वताया कि यहाँ प्राय: रात्रि मे शेर आता है। स्थान सूनसान, वृक्षो और पर्वतो से घिरा तो था ही, सभी चौकन्ने रहे। यह भी आश्चर्य ही था कि प्रात. सभी साथी आनन्द मे झूम उठे और सुरक्षित रहे। भला, सुरक्षित क्यो न रहते ? उनके साथ परम-दयालु मुनि श्री जो थे, भला उनका प्रभाव भी तो हिंसक प्राणी शेर पर पडना था। शायद उसने सोचा हो कि दयालु की छाया मे वैठे प्राणियो पर दया ही करनी चाहिये। वस, हम सव दिनाक १४ को वयासी होते हुए वशिष्ठ गुफा से दो मील पूर्व गूलर ग्राम के निकट टीहरी की राजमाता श्री कमलेन्दु मती शाह की कोठी पर पहुँचे।

कोठी किसकी ?

राजमाता टीहरी ने मुनि श्री का भव्य स्वागत किया। और सघ के ठहरने की पूरी व्यवस्था की। यद्यपि आज राजा-महाराजा और रजवाडे वैधानिक दृष्टि से समाप्तप्राय हैं—उनके प्रिवी पर्स और विशेपाधिकारो के प्रश्न भी सन्देहास्पद हैं। तथापि राजमाता के सद्-व्यवहार से ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी आत्मा मे आज भी राजसी योग वना हुआ है। वे अतिथि सत्कार और उनकी सुश्रूपा का पूरा ध्यान रखती हैं। राजमाता अग्रेजी और सस्कृत की जानकार है और उनका अधिकाश समय स्वधर्म ग्रन्थ पठन-पाठन मे व्यतीत होता है। कोठी मे एक मन्दिर भी है जिसमे शिव-उपासना के माध्यम से भक्ति होती है। राजमाता स्वय शिव-उपासक हैं। इतना विशेष कि वे अपरिग्रह और समतावाद मे अच्छी आस्था रखती हैं।

मुनि श्री के दर्शनानन्तर जव राजमाता मुनि श्री और श्रावको के सानिध्य मे वैठी और धार्मिक चर्चा के मध्य अन्य प्रासगिक वार्तालाप हुआ तव मुनि श्री ने उनसे प्रश्न किया कि ये कोठी आपकी है ? तव राजमाता ने विवेक और वैराग्यपूर्ण उत्तर दिया कि—इस कोठी को शाह (उनका भाव पति से था) ने वनवाया और अव यह उनके पुत्रो की है—मेरा तो कुछ नही, यह शरीर भी मिट्टी का है। उत्तर सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गये और सवको वडे गौरव का अनुभव हुआ कि—भारत भूमि मे आज भी ज्ञान और वैराग्य की झलक है, उसके राजे-महाराजे आज भी प्राचीनता के गौरव का अनुभव कर रहे हैं। राजमाता का जीवन धार्मिक और सादगी से पूर्ण है। मुनि श्री रातभर यहाँ ठहरे और १५ नवम्बर को लक्ष्मण झूला के लिये

प्रस्थान किया। प्रस्थान के समय राजमाता और उनके सहयोगियो ने मुनि श्री को भावभीनी विदाई दी और सभी देर तक मुनि श्री के दर्शन करते रहे।

लक्ष्मण झूला और ऋषिकेश

लक्ष्मण झूला प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ मुनि श्री डाक बँगले मे ठहरे। यहाँ के निकटवर्ती गीता भवन मे तो मुनि श्री गतवर्ष भी जा चुके थे। उन दिनो यहाँ कल्याण के सम्पादक परमधर्मात्मा श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार मौजूद थे और उन्होंने मुनि श्री का भव्य स्वागत किया था। मुनि श्री के कई प्रवचन भी उनके निवास-स्थल के प्राङ्गण मे हुए थे। इस बार विश्राम की दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए, कही जाना नही हुआ। यहाँ हरद्वार, ऋषिकेश, जगाधरी, मेरठ, मुजफ्फरनगर, देहरादून, सहारनपुर, रुडकी और दिल्ली आदि के लोगो ने मुनि श्री के दर्शन किये। दिनाक १६ को मुनि श्री ने ऋषिकेश की ओर विहार किया। ला० दीपचन्द प्रभृति स्थानीय साधर्मी सभी सज्जनो ने पूरी-पूरी व्यवस्था की। दो दिन स्थानीय काली कमली सत्सग भवन मे मुनि श्री के प्रवचन हुए। मुनि श्री ने ऋषिकेश पदार्पण के समय जिनचैत्यालय मे दर्शन किये तत्पश्चात् आयोजित सभा मे प्रवचन करते हुए कहा कि—हमारी भावना हिमालय यात्रा की रही, तदनुसार हमने यह यात्रा नजीबाबाद से ७ मई ७० मे प्रात काल ७ बजे प्रारम्भ की। यात्रा सानन्द हुई और आज दिनाक १६ नवम्बर ७० को छ मास १३ दिन बाद इस क्षेत्र ऋषिकेश-जिन-चैत्यालय मे उसका विसर्जन कर रहे हैं—

'मगल भगवानर्हन्मगल भगवान जिन ।
मगल प्रथमाचार्यो मगल वृषभेश्वर. ॥'

एण्टीबायोटिक्स

ऋषिकेश से मुनि श्री 'एण्टीबायोटिक्स' आये। यह दवाइयो की प्रसिद्ध फैक्टरी है। और यहाँ अनेको जैन परिवार काम करते हैं—उनमे इजीनियर आदि अनेक पदो पर कार्य करने वाले अनेक जैन व्यक्ति हैं। गत वर्ष भी मुनि श्री यहाँ आये थे और लोगो का बडा आग्रह था। इस बार मुनि श्री ने अपने प्रवचन मे लोगो से प्रतिज्ञा कराई कि वे सरकार के प्रति निष्ठावान रहेंगे और कभी भी फैक्टरी को हानि नही पहुचाएगे। स्मरण रहे गतवर्ष फैक्टरी और कर्मचारियों मे विवाद के कारण फैक्टरी लाखो की हानि उठा चुकी थी। वस्तुत यह हानि और किसी की नही, जनता की ही हानि थी। लोगो ने मुनि श्री मे श्रद्धा प्रकट करते हुए उनका आभार प्रकट किया और मुनि श्री हरद्वार की ओर विहार कर गये।

श्री बद्रीश सनातन धर्म सस्कृत आदर्श-विद्यालय

श्रीनगर जिला पौड़ी गढवाल उत्तर-प्रदेश

ध्यान व्याजमुपेत्यचिन्तयसि का मुन्मील्य चक्षु. क्षणं,
पश्यानङ्गशरातुर जनमिम त्रातापि नो रक्षसि।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तोऽन्यत. क. पुमान्,
सेर्ष्यंमारबधूरित्यभिहितो बौद्ध जिन· पातु व. ॥१॥

श्री परमहस परिव्राजकाचार्य दिगम्बर मुनि १०८ स्वामी श्री विद्यानन्द जी के चरण कमलो मे सादर अभिनन्दन करते हुए हम सस्कृत विद्यालय श्रीनगर के अध्यापक तथा छात्रवृन्द कोटिश प्रणामाजलिया अर्पित करते है।

श्री महामुनीन्द्र ! आपने इस उत्तराखण्ड की दुर्गम्य ऊबड-खाबड पर्वत मालाओ को उल्लघन कर परमपावनी अलकनन्दा के तीर बसे हुए इस श्री-क्षेत्र मे चातुरमास्य व्रत का उद्यापन समाप्ति काल तक जो जो अनिर्वचनीय उपदेश हमे प्रदान किए। इसके लिए हम श्रीमान्जी के आभारी होते हुए जीवन भर उऋण नही हो सकते।

हम ईश्वर से-प्रार्थना करते हैं कि ऐसे धर्मोपकारी महात्मा को दीर्घायु-प्रदान कर देश का कल्याण होता रहे।

भवदीय

अध्यापक व छात्रवृन्द

दिनाक ११-१०-७०

'जय जय जिन शश्वद्विश्वविद्यैक मूर्ते ।
हर-हर[1] दुरित मे ध्वस्तनि शेष दोष ॥'
—आ० नेमिचन्द्र प्रतिष्ठातिलक

'शब्दानामनेकार्था '—शब्दो के अनेक अर्थ[2] होते हैं। और प्रयोजन के अनुसार उनका अर्थ ग्रहण किया जाता है। सैन्धव सैधा-नमक को कहते है और इसका अर्थ अश्व भी होता है। जैसे भोजन के समय सैन्धव से सैधा नमक ग्रहण करने से प्रयोजन की सिद्धि होती है और सवारी के समय अश्व कार्यकारी होता है। वैसे ही 'हर' शब्द की गति जाननी चाहिये। प्रस्तुत प्रकरण 'हरद्वार' मे 'हर' से क्या जाना जाय यह विचारणीय विषय है। जैसे इष्टसिद्धि मे लोग अन्य अर्थों का ग्रहण कर लेते हैं, वैसे यहाँ जीव की इष्ट सिद्धि कर्म-हरण से होती है, जो ज्ञानी जीव का अन्तिम लक्ष्य है। ऊपर की कारिका मे 'हर' का अर्थ 'हरण करना' ही लिया गया है। अर्थात् हे जिनेन्द्र, आप हमारे कर्म-हरण मे द्वार रूप हैं—आपकी भक्ति से हम कर्महरण के द्वार पर पहुच जाते हैं, आप हमारे कर्मों के हरण मे निमित्त हैं। इसलिये हम आपको 'हरद्वार' कहते हैं।

आज हम 'हरद्वार' मे हैं—जो इधर की प्रसिद्धि में एक नगर रूप है। कहते हैं—यहाँ पहिले एक शिवालय था, जिसे गगाधर महादेव का कहा जाता था। शिवालय मे जाने के लिये पैडियाँ थी। जिस कारण 'हर की पैडी' नाम प्रसिद्ध हुआ। वैष्णव सप्रदाय के लोग विष्णु (हरि)[3] के उपासक होते हैं वे इस स्थान को हरिद्वार बोलते हैं और शिव-भक्त इसको महादेव[4] की मुख्यमान्यता के कारण 'हरद्वार' कहते हैं। वास्तव मे ये अपने-अपने दृष्टिकोण हैं। हमारी दृष्टि मे दोनो ही अपनी-अपनी श्रद्धानुसार ठीक हैं। पर हमारा निवेदन है कि यदि सभी अपनी-अपनी मान्यता मे रहते हुए भी इसके अर्थ को परिष्कृत रूप मे भी लेलें तो लाभ ही होगा। कर्मों अर्थात् वन्धनो से

---

१ 'शिव शिवपदाध्यासात् दुरितारि हरो हर ।'—
आचार्य जिनसेन, आदि पुराण ६

२ 'सिहेऽश्वेभकपिप्लवेहिगरुडेकीराशुलोकोत्तरे,
चन्द्रादित्यहुताशवातगिरिशा श्री श्रीधरेन्द्रे गृहे ।
शुक्रेसौ यमराजवेषवरुणे स्वर्णेशनो पारदे,
एतेष्वेव विभाति भेकहरिते वाच्यो हरिर्वाच्यवत् ॥'—

३ 'ऋषभो हरि '—भागवत ४।३।३४=ऋषभ को भी हरि कहा गया है।

४ 'महादेवो हर —सूत सहिता १।१३।८२

सभी छुटकारा चाहते हैं, इसमे किसी को विवाद नही। अत. यदि हम हरद्वार का भाव धर्म से लें अर्थात् जो दुखो के हरण का द्वार (उपाय) है वह 'हरद्वार' है। और धर्म ही एक ऐसा है जो दुखो के हरण का मार्ग है। मुनि श्री गत वर्ष जब हरद्वार आये थे और हर की पैडी पर लगातार उन्होने प्रवचन किये तब यही कहा कि धर्म ही कर्मों—दुखो से छुटकारा दिलाने वाला है आदि।

इस नगर और समस्त भारतवर्ष मे गगा का माहात्म्य माना जाता है और है भी ऐसा ही। जहाँ गगा हमारे धार्मिक दैनिक कृत्यो मे उपयोगी है, वहाँ यह देश को कृषि आदि की दृष्टि से भी लाभकारी है। हमारे त्यागी मुनियो ने भी इसके तट पर बैठकर आत्म-शोध किया है। विशेष इतना कि जहाँ वे गगा जी के जल से अपने बाह्याचार की शुद्धि रखते थे वहाँ उन्हें ज्ञान द्वारा आत्म-प्रक्षालन का भी पूर्ण ध्यान रहता था। वे अध्यात्म दृष्टि से ज्ञान को, और ज्ञानी की वाणी को—जिससे पाप कट सकें, 'गगा' नाम देते थे। केवल बाह्यशुद्धि से आत्मशुद्धि कठिन है। दोनो ही का होना आवश्यक है। हमारे यहाँ तो सभी आस्तिक धर्मों मे तीर्थंकरों–महापुरुषो के उपदेशो को पाप प्रक्षालन करने वाला बतलाया गया है और प्रक्षालन करने के कारण उनकी वाणी का नाम भी युक्तिसगत है। अत गगा दोनो भावो मे श्रेयस्कर है—व्यावहारिक और आध्यात्मिक। आत्म-शोध के मार्ग मे आगम महापुरुष वाणी को गगा नाम से सबोधित भी किया है। यथा—

१. 'केवलिकन्ये वाङ्मयगगे जगदम्बे अघ नाश हमारे।'

२. वीर हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है,
मोह महामद भेदि चली जग की जडता सब दूर करी है।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली बहुभग तरंगनि सो उचरी है,
ताशुचि शारद गगनदी प्रति मैं अँजुरी करि शीस धरी है॥'

३. यदीया वाग्गगा विविधनयकल्लोलविमला।
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति॥'

४. ज्ञानगगाजल क्षालुनिनिर्मल सचित पातक भग।

५ प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धे—
र्या देव त्वत्पदकमलयो. सङ्गता ज्ञान-गगा।
चेतस्तस्यां ममरुचिवशादाप्लुत क्षालितांह,
कल्माष यद् भवति किमियं देव सदेहभूमि.॥

व्यवहार दृष्टि मे जहाँ तक गगा-जलधारा की बात है, इसे जटा से और गोमुख से निकला माना जाता है। अपनी इस यात्रा मे हमे मालूम हुआ कि—

अलकनन्दा और भागीरथी अपने सगम-स्थान देवप्रयाग मे आने तक अपने पृथक् पृथक् मूलनामो से सबोधित की जाती हैं और देवप्रयाग से 'गगा' नाम का व्यपदेश होना है। जो भी हो, जैसे शास्त्रो के अनुसार गगानदी हिमवन पर्वत के पद्म-द्रह से निकलती है। वहाँ पर्वततट मे जिह्विका नामा एक प्रणाली है। उस प्रणाली का आकार वृषभाकार[1] (जिसे गो मुख भी कहा है) है। प्रणालिका के मुख, कान, जीभ नेत्र सिह के समान और भौंह मस्तक आदि गऊ[2] के समान है। मुख्यतया उसे वृषभाकारा कहा गया है। जैन शास्त्रो मे कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयो और जिनविम्वो का वर्णन मिलता है। वहाँ लिखा है—श्री मदिर के मस्तक पर कमल है उसकी कर्णिका मे सिहासन है वह सिहासन जटा मुकुट (सभवत छत्र-चंवर आदि से तात्पर्य हो) युक्त है। उस सिहासन पर जिनविम्व है जव गगा उस ओर से आती है तो मानो वह जिनविम्व का अभिषेक करना चाहती हो—इसीलिये जटा-मुकुट से होकर आ रही है[3]। इस प्रकार गगावतरण मे जनसाधारण मे मतभेद होने पर भी वहुत साम्यता है। गगा की उपयोगिता सभी मानते हैं। सभी इस देश के वासी हैं—ऐसी वातो से तो सभी को साम्यता की ओर वढना चाहिये। हमे गगा देखकर वडा हर्ष हुआ और इस पवित्र नदी के तीर मुनि श्री ने कई दिन विताए।

हिमालय यात्रा के वाद इस वार दिनाक २३ नवम्वर को जव मुनिश्री ने हरद्वार नगर मे पदार्पण किया, नगर की जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया। हजारो-हजारो की भीड उमडी पड रही थी। मुनि श्री स्थानीय गीता-भवन मे ठहरे और उनके भवन मे ही प्रवचन हुए। प्रवचनो से हजारो श्रोता लाभान्वित हुए और धर्म प्रभावना हुई। स्थानीय प्रसिद्ध विद्वान्-जो राजनीति मे भी कार्य करते रहे हैं—श्री चिरजीवलाल तो फूले नही समाये। जैन समाज के सदस्यो व श्री सुमतिप्रसाद जैन और श्री जौहरी लाल जैन ने व्यवस्था मे अच्छा योग दिया। स्मरण रहे कि गतवर्ष भी इन्होने अपने उत्साह का अच्छा परिचय दिया था। हर्ष का विषय है कि मुनिश्री के आशीर्वाद से यहाँ के जैनो का ध्यान वास्तविक हर-द्वार (कर्म हरण द्वार—धर्मभावना) की ओर गया है और वे धर्मायतन आदि के निर्माण कराने की भावना से ओत-प्रोत हुए हैं।

---

१ 'कोसद्दुगदीह वहला वसहायारा य जिम्हिया रुदा ।।'—५८४

२ केसरिमुहसुदिजिब्भादिट्ठी भूसीसपहुदि गोसरिसा।
तेणिह पणालिया सा वसहायारेत्ति णिद्दिट्ठा ।।'—५८५

३ सिरिगिहसीसठियवुजकण्णियसिहासण जडामउलं।
जिणमभिसेत्तुमणा वा ओदिण्णा मत्थए गगा ।।—५८६
—सभी 'त्रिलोकसार से

आशा है हिमालय मे प्रवेश करने से पूर्व ज्वालापुर और श्रीनगर के मध्य हरद्वार लोगो मे तृतीय (ज्ञान) नेत्र का कार्य करेगा। त्रिसख्यक होने से तीनो धार्मिक उपकरण रत्नत्रय का भी स्मरण करायेंगे, ऐसा हमे विश्वास है। मुनि श्री २४ दिन यहाँ ठहरकर दिनाक १६ दिसम्बर ७० को ज्वालापुर की ओर विहार कर गये।

'विस्फुरच्चित्प्रकाशाम्भोधारया क्षालितेव या।
विद्यानन्द मयी नित्यं विजयेत् सरस्वती ॥'

* मुनिश्री का मंगलप्रवचन *

[विश्व मे लोक प्रियधर्म]

'अहिंसैव जगन्माताऽहिंसैवानन्द पद्धति ।
अहिंसैव गति साध्वी श्रीरहिंसैव शाश्वती ॥'
—ज्ञानार्णव आचार्य शुभचन्द्र ८।३२

—अहिंसा ही जगत् की माता है, अहिंसा ही आनद-पद्धति—श्रेणी है, अहिंसा ही श्रेष्ठ गति है और अहिंसा ही शाश्वतिक है। लोक में माता का स्थान रक्षा करने वालो मे सबसे बडा माना गया है। पुत्र या पुत्री के सकट मे वह साथ नही छोडना चाहती और जैसे-तैसे भी उनकी रक्षा करती है। यही बात अहिंसा मे है। अत उसे मातृ-रूप कहा है और इसीलिये उसकी सब याद करते हैं। अवोध वालक के मुख से जन्म के अनन्तर विना कुछ सिखाये ही 'माँ' शब्द की ध्वनि निकल पडती है। अत यह सिद्ध है कि 'जो रक्षा करे' वह माँ है इसलिये आचार्य शुभचन्द्र ने अहिंसा को माँ के नाम से सवोधित किया। एक विद्वान् तो इससे भी आगे वढ़ गये उन्होने तो अहिंसा को ब्रह्म (परमात्मा) की सज्ञा दे दी। वे कहते हैं—'अहिंसा भूताना जगति विदित ब्रह्मपरमम्।'—अर्थात् जीवो की अहिंसा (रक्षा) ही परमब्रह्म—परमात्मा है और यह वात ससार मे प्रसिद्ध है, आदि। इसलिये अहिंसा को प्रमुख स्थान देना चाहिये।

विचार दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि जो जीव, 'पर' की हिंसा करते हैं वे पहिले अपनी हिंसा कर लेते हैं। क्योकि विना मलिन परिणामो के प्राण-व्यपरोपण रूप कार्य किया नही जा सकता और मलिन-परिणाम करना ही तो हिंसा का मूल है। जिनके राग-द्वेष आदि नही हैं—जो परम दिगम्बर, वीतराग हैं वे ही पूर्ण अहिंसक हैं। विना वीतरागता—दिगम्बरत्व धारण किये



मुनि विद्यानन्द जी प्रवचन मुद्रा मे

पूर्ण अहिंसा का पालन नही हो सकता। इसीलिये दिगम्बरत्व का उपदेश दिया गया है। अत अपने परिणामो को निर्मल रखना चाहिये। परिणाम ही पुण्य-पाप मे कारण होते हैं। कहा भी है—

'परिणाममेव कारण माहुः खलु पुण्यपापयो प्राज्ञ'।
तस्मात्पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेय ॥'

—बुद्धिमान पुरुषो ने परिणाम मात्र को पुण्य और पाप का कारण माना है। इसलिये पाप की हानि (परित्याग) और पुण्य का सचय करना चाहिये। यदि आप सर्वथा वीतरागी नही बन सकें तो भी पुण्य-सचय की दृष्टि को ध्यान मे रखकर अपने परिणाम (विचार) तो शुभ रखने का प्रयत्न तो अवश्य करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो अपनी और पर की—दोनो की रक्षा कर सकेंगे। स्व-रक्षा मे ही पर की रक्षा निहित है और पर की रक्षा मे ही स्व की रक्षा निहित है। जब आप हिंसा के मूल कारण प्रमाद राग-द्वेष-असावधानी आदि का परित्याग करेंगे तब आपके भाव ही जीव-घात मे न होगे।

एक बार किसी राजर्षि ने वीतरागी परमदिगम्बर मुनि से प्रश्न किया यह प्रश्न बाह्यदृष्टि को ध्यान रखकर ही समझना चाहिये। क्योकि जीवो का घात बाह्य-हिंसा से सम्बन्धित है—जो बिना अन्तरग हिंसा के नही हो सकता। उनका प्रश्न था—

'जलेजन्तु स्थले जन्तुराकाशे जन्तुरेव च।
जन्तु मालाकुले लोके कथ भिक्षु रहिंसक ॥

अर्थात् जल मे भी जीव हैं, स्थल मे भी जीव हैं, और आकाश मे भी जीव हैं। लोक ही जन्तुओ (जीवो) से व्याप्त है—आकाश का एक प्रदेश भी जीवो से रहित नही है। ऐसी स्थिति मे भिक्षु (साधु) अहिंसक कैसे रह सकता है? प्रश्न बडे महत्त्व का था। इसमे जीवो के प्राण-व्यपरोपण की पूर्ण दृष्टि थी। इस प्रश्न का निराकरण करते हुए वीतरागी साधु बोले—

'अघ्नन्नपि भवेत्पापी निघ्नन्नपि न पापभाक्।
परिणाम विशेषेण यथा धीवर-कर्षको ॥'

—मछली मारने वाला धीवर प्रात से सायकाल तक नदी मे जाल डाले प्रतीक्षा मे बैठा रहता है और मछली फँसाने की बात सोचता है। पर शाम तक भी उसके जाल मे एक भी मछली नही आती। तब भी वह पाप—हिंसा का भागी है क्योकि—उसके परिणामो मे हिंसा व्याप्त है। इसके विपरीत दूसरी ओर एक कृषक है जो खेती—प्राणरक्षण मे हेतु भूत कार्य के निमित्त

से हल चलाता है उसमे जीवो का घात भी होता है लेकिन फिर भी वह हिंसा का भागी नही होता। क्योकि उसके रक्षण के भाव हैं।

इन बतलाई हुई बातो से यह निष्कर्ष निकलता है कि अहिंसा धर्म को समझें, उसकी गहराई तक पहुँचें। जब तक प्राणी के मन मे धर्म के भाव हैं, तब तक वह मारने वालो को भी नही मारता। इस बात को आचार्य गुण भद्र अपने आत्मानुशासन ग्रन्थ मे इस प्रकार कहते हैं—

'धर्मो वसेन्मनसि यावदल स तावद्—
हन्ता न हन्तुरपि पश्य गतेऽथितस्मिन्।
दृष्टा परस्पर हति जनकात्मजानाम्,
रक्षा ततोऽस्य जगत खलुधर्म एव॥—
—आत्मानुशासन २६

—जब तक मनुष्य के मन मे धर्म रहता है तब तक वह मारने वालो को भी नही मारता किन्तु देखो ? जब धर्म उसके दिल और दिमाग से निकल जाता है तब औरो की कौन कहे, प्रिय पुत्र को पिता मार डालता है और पिता को पुत्र मार डालता है। अत यह निश्चित है कि इस विश्व की रक्षा का मूल कारण धर्म है और वह अहिंसा मय है। इससे यह कहा जा सकता है कि सफल और सुव्यवस्थित जीवन बिताने के लिये 'अहिंसा-धर्म अनिवार्य है। अत हम कह सकते हैं—

विश्व का सर्वसम्मत, विश्वहितकारी धर्म 'अहिंसा धर्म' ही है। अतः सम्पूर्ण विश्व मे लोक-प्रिय धर्म अहिंसामयी है। मनुष्य जिस प्रकार अपनी हिंसा नही चाहता, उसी प्रकार अन्य जीव भी अपनी हिंसा नहीं चाहते। अत. समस्त धर्मों से प्राचीन धर्म 'अहिंसा धर्म' है। अहिंसा आत्मा का सहज व प्राजल धर्म है। और यह धर्म सत्य आदि सभी मे व्याप्त है। इसलिये कहा है—

'सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।'—

—सत्य बोलो पर, प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य भी मत बोलो। क्योकि अप्रिय वचन किसी के मन को दुखकारक है और दुख देना ही हिंसा है। फलत —'वह सत्य न बोलना ही अच्छा है जो अहिंसक तरीके से बोलना नही आता हो अर्थात् छल-कपट पूर्ण सत्य भी हिंसात्मक होने से त्याज्य है—अहिंसा से पूर्ण सत्य ही उपादेय है।'

जो लोग मांस भक्षण करते है, उनके प्रति भी मुझे कुछ कहना है। हमारी

प्राचीन पद्धति मांस-भक्षण की नही रही। हमारे शरीर की रचना और स्वाभाविक प्रवृत्तिया मास-भक्षी पशुओ से सर्वथा भिन्न भी हैं। न ही मनुष्यो के हाथ-पैर आदि हिंसक पशुओ तुल्य हैं और न स्वभाव ही पशुओं जैसा है। मनुष्य के नख आदि की बनावट जिह्वा और दाढ की रचना, पानी पीने की विधि मांस-भक्षी पशुओ से सर्वथा भिन्न हैं। मनुष्य पानी घोट-घोट कर पीता है और मांस-भक्षी पशु जीभ से चाटकर। मास-भक्षी पशुओ की जिह्वा खुरदरी होती है और मनुष्य की जिह्वा चिकनी। इन सब बातो से यही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य शाकाहारी प्राणी है। उसे मांस से बचना चाहिये।

बहुत से लोगो को कहते सुना जाता है कि हमारे पूर्वज मांस-भक्षण करते थे। परन्तु यह भ्रान्ति मात्र है। वे लोग तो बडी सात्विक प्रकृति के धारक होते थे। यदि निर्दयी होते या उनकी तामसी प्रकृति होती तो राज्य शासन ही सुव्यवस्थित न रहता। भगवान राम ने मांस नही खाया, राजा दशरथ अहिंसा प्रेमी रहे और जनक महाराज मांस सेवन से निवृत्त थे। ये सब ही शुद्ध शाकाहारी थे। जब सीता जी की खोज मे हनुमान लका पहुँचे और परिचय-प्रसग मे सीता ने उनसे राम के गुणो को पूछा तो हनुमान ने स्पष्ट कहा—

न मास राघवो भुक्ते न चैव मधु-सेवते।
वन्यं सुविहित नित्य भक्तमश्नाति केवलम् ॥—

—बाल्मीकि रामायण ३६।४१ (सुन्दरकाण्ड)

—रामचन्द्र जी मांस भक्षण नही करते, वे मधु का सेवन नही करते। वे तो केवल भली-भाति निष्पन्न किये हुए भात (चावलो) का सेवन करते हैं। राजा जनक के विषय मे भवभूति ने उत्तर रामचरित मे स्पष्ट ही निर्देश किया है—

'निवृत्तमासस्तु तत्र भवान् जनक'—

—उत्तर रामचरित ४।१

—जनक महाराज मांस-परित्यागी हैं। ऐसे ही अन्य अनेको प्रमाण हैं जिनसे महपुरुषो के पूर्ण शाकाहारी होने की सिद्धि होती है। अत लोगो को मांस-भक्षण जैसी निन्द्य प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग करना चाहिये और धर्म मे प्रवृत्ति करनी चाहिये क्योकि मानव जीवन का कुछ भरोसा नही, आयु क्षणिक है यदि धर्म किये बिना आयु चली गई तो इससे बडी कोई हानि नही है। कहा भी है—

आयुः क्षण लव मात्रं न लभ्यते हेमकोटिभि' क्वापि ।
तद् गच्छति सर्वमृषत' काऽधिका हानि. ॥—

—आयु का निमेष, पल, क्षण और समय मात्र भी व्यतीत होने पर नहीं वच सकता । चाहे कही भी चले जाओ, कैसे भी यत्न करो या करोडो-करोडो सुवर्ण मुद्राए-सुवर्णों की राशिया दो, तव भी वह सुरक्षित नही रह सकती । आयु का अच्छे कार्यों मे सदुपयोग करो । यह ही जीवन का सार है । आयु व्यर्थ जाने के वरावर और कोई हानि नही । अपनी और दूसरो की आयु का रक्षण करने वाले ही बुद्धिमान हैं और वे ही धर्मात्मा हैं । इसीलिये तो कहा है—'आत्मन प्रतिकूलानि परेषा मा समाचरेत् ।'—'अहिंसा परमोधर्म ।'—इस वाक्य मे भी यही भाव है कि सव धर्मों से वडा धर्म अहिंसा'[1] है, अहिंसा ही जगत् धर्मों मे व्यापक रूप से विद्यमान है, अहिंसा ही विश्व धर्म है और विश्व धर्म ही अहिंसा है । हमे आशा है आप इन सव वातो को समझेंगे और मांस का सर्वथा परित्याग करेंगे और जीवो पर दया करेंगे । यदि आपने ऐसा किया तो हम आपसे कहेगे कि आप ससार मे 'अहिंसा धर्म की जय' और 'विश्व धर्म की जय' का व्यापक और सुमधुर नाद कर रहे हैं ।

'यत्र स्याद्वादसिद्धान्तो यत्र वीरो दिगम्बर ।
तत्र श्रीविजयोभूति ध्रुवानन्दो ध्रुवादर ॥'—

---

१ 'यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौंजरे ॥
एव सर्वमहिसाया धर्मार्थमपि धीयते ।
अमृत स नित्य वसतियोऽहिंसा प्रतिपद्यते ॥'
—महाभारत, मोक्षपर्व २३७।१८-१९
'अहिंसैव हि सर्वेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता ।'—
वही, २५७।६
अहिंसा परमा सिद्धि शिलोञ्छवृत्तिरुत्तमा ।
शाकाहार सुधातुल्य उपवास पर तप ॥'—पद्मपुराण व्यास ५।५१।६२

हिमालय में जितने कंकर उतने शंकर

इस युग के अन्तिम मनु अथवा कुलकर महाराजा 'नाभिराज' थे। उनकी रानी महारानी 'मरुदेवी' थी। उनके पुत्र आदि तीर्थंकर 'वृषभदेव' थे। जब तीर्थंकर वृषभदेव राज्यभार का दायित्व सभालने योग्य हुए तो महाराजा 'नाभिराज' ने उनका राज्याभिषेक कर दिया। यथा—

'नृपा मूर्द्धाभिषिक्ता ये नाभिराजपुरस्सरा ।
राजवद् राजसिंहोऽयमभ्यषिच्यत तैं समम् ।।'
—आदिपुराण भगवज्जिनसेन १६।२२४

—सब राजाओ मे श्रेष्ठ यह वृषभदेव वास्तव मे राजपद के योग्य हैं, ऐसा मानकर नाभिराज आदि राजाओ ने उनका एक साथ अभिषेक किया।

इसके पश्चात् जब तीर्थंकर वृषभदेव ने दीक्षा ली, उस समय भी महाराजा नाभिराज और रानी मरुदेवी अन्य लोगो के साथ, तपकल्याणक का उत्सव देखने के लिये पालकी के पीछे चल रहे थे।'—

'मरुदेव्या सम नाभिराजो राजशतैर्वृत. ।
अनूत्तस्थौ तदा दृष्टु विभोर्निष्क्रमणोत्सवम् ।।'—
—आदिपुराण भगवज्जिनसेन १७।१७८

—उस समय महाराजा नाभिराज भी मरुदेवी तथा सैकडो राजाओ से परिवृत्त होकर प्रभु वृषभदेव के तपकल्याणक का उत्सव देखने के लिये उनके पीछे जा रहे थे। उस समय का दृश्य विचित्र था। एक ही समय मे विविध रसो का सामजस्य था—

'ऊर्ध्वं नवरसा जाता नृत्यदप्सरसा स्फुटा ।
नाभेयेन विमुक्तानामध शोकरसोऽभवत् ।।'—
—हरिवंशपुराण ६।६१

—ऊपर तो अप्सराओ के नृत्य से नौ रस प्रकट हो रहे थे—सबमे उल्लास था। और नीचे पृथ्वीतल पर तीर्थंकर वृषभदेव द्वारा छोडे हुए जन [मोहवश] शोक रस से अभिभूत हो रहे थे।

आचार्य रविषेण के लेखानुसार—तीर्थंकर वृषभदेव ने वन मे पहुँचकर माता-पिता और बन्धुजनो से आज्ञा लेकर 'णमो सिद्धाण' [नम सिद्धेभ्य] कहकर पचमुष्टिलोच करते हुए श्रमण दिगम्बर दीक्षा ले ली। यथा—

'आपृच्छणं ततः कृत्वा पित्रोर्बन्धुजनस्य च।
'नम सिद्धेभ्य' इत्युक्त्वा श्रामण्य प्रत्यपद्यत ॥'
—पद्मपुराण ३।२८२

उपर्युक्त अवतरणो से यह तो स्पष्ट ही है कि तीर्थंकर वृषभदेव के दीक्षा कल्याणक के समय उनके माता-पिता विद्यमान थे। किन्तु इसके बाद वे दोनो कितने दिन जीवित रहे अथवा उन्होने अपना शेष जीवन किस प्रकार और कहाँ व्यतीत किया ? इसके सम्बन्ध मे जैन साहित्य मे अभी तक कोई स्पष्ट उल्लेख हमारे देखने मे नही आया। किन्तु इस विषय मे हिन्दू पुराण 'श्रीमद्भागवत मे महर्षि शुकदेव ने जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके लिये हम महर्षि शुकदेव के चिर-ऋणी हैं। महर्षि लिखते है—

'विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मज समयसेतुरक्षाया-मभिषिच्य सहमरुदेव्या विशालाया प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन ··· ····· महिमानमवाप।' —श्रीमद्भागवत ५।४।५

[टीका] आपौर प्रकृति पौरान्प्रकृतींश्चाभिव्याप्य विदितोऽनुरागो यस्मिन्। कथभूतोनाभिः। जनपद. जना. पौरादय. पदं प्रमाणं यस्य सः। आत्मज धर्म-मर्यादारक्षणार्थमभिषिच्य। ··· विशालाया बदरिकाश्रमे। प्रसन्न. परानुद्वेजकं निपुणं च तीव्र तेन उपासीनः सेवमान. कालेन तन्महिमान जीवन्मुक्तिमवापः।'
—श्रीधर स्वामीकृत-सस्कृत टीका, काशी

पुरवासियो की प्रकृति को अभिव्याप्त करने वाला जिनका अनुराग प्रसिद्ध था और जो नगरवासियो को प्रमाणभूत थे, ऐसे नाभिराज धर्ममर्यादा रक्षणार्थ अपने पुत्र वृषभदेव का राज्याभिषेक करके विशाला—बदरिकाश्रम मे प्रसन्नमन से [चिर-उपास्य] तीव्र [घोर] तप करते हुए यथाकाल महिमा-रूपजीवन्मुक्ति को प्राप्त हुए।

उक्त कथन से नाभिराज और मरुदेवी के अन्तिम जीवन पर स्पष्ट प्रकाश पडता है। इसके अनुसार नाभिराज और मरुदेवी विशाला नामक स्थान पर तप करके जीवन्मुक्त हुए। विशाला को ही बद्रीविशाल कहते हैं। टीका मे विशाला का अर्थ बदरिकाश्रम किया है, जो अवश्य ही ध्यान देने योग्य है। यहाँ बदरी नामक वृक्ष की भी प्रमुखता है। इस स्थान पर उस समय मुनिजनो का आश्रम रहा होगा—जिसके कारण इस स्थान को बदरिकाश्रम कहा गया है। निश्चय ही श्री नाभिराज और मरुदेवी की घोर तपस्या के कारण मनुष्यो का

ध्यान इस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ और जिस स्थान से उन्होने अपनी साधना की सिद्धि की, वह स्थान परम-पावन तीर्थ-धाम बन गया ।

जैन-वाङ्मय का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि यह प्रदेश तीर्थंकरो और मुनियो की तपोभूमि और विहार-भूमि रहा है। तीर्थंकर वृषभदेव कई वार कैलाश पर्वत पर पहुँचे थे वहाँ पर उनका समवशरण [धर्म-सभा] भी लगा था। तीर्थंकर का उपदेश श्रवण करने के लिये कई वार इस देश के प्रथम चक्रवर्ति भरत [जिनके कारण इस देश का नाम भारत पडा] भी अपने पिता तीर्थंकर वृषभदेव की दिव्य-देशना श्रवण करने अपने परिकर के साथ कैलाश गये थे। कैलाश जाते समय यह प्रदेश मार्ग मे पडता था। तीर्थंकर वृषभदेव और उनके साथ विहार करने वाले सहस्रो मुनियो के चरणो की पावन-रज यहाँ के कण-कण मे व्याप्त है। अन्त मे श्री वृषभदेव ने कैलाश पर्वत से ही निर्वाण भी प्राप्त किया। आचार्य जिनसेन अत्यन्त भक्तिप्लावित हृदय से तीर्थंकर की उस अन्तिम अवस्था का चित्रण करते हुए कहते हैं—

'इत्थं कृत्वा समर्थं भवजलधिजलोत्तारणे भावतीर्थम् ।
कल्पान्तस्थायि भूयस्त्रिभुवनहितकृत्क्षेत्रतीर्थं च कर्तुम् ।
स्वाभाव्यादारुरोह श्रमणगणसुरव्रातसम्पूज्यपादः ।
कैलासाख्य महीध्र निषधमिव वृषादित्य इद्ध प्रभाढ्य ॥'—

—हरिवंश पुराण १२।८०

—'मुनिगण और देवो से पूजित चरणो के धारक श्री वृषभजिनेश्वर ससार रूपी सागर के जल से पार करने मे समर्थ रत्नत्रयरूप भावतीर्थ का प्रवर्तन कर कल्पान्तकाल तक स्थिर रहने वाले एव त्रिभुवन-जन-हितकारी क्षेत्र तीर्थ के प्रवर्तन के लिये स्वभावत कैलाश पर्वत पर इस प्रकार आरूढ हो गये जिस प्रकार दैदीप्यमान प्रभा का धारक वृष का सूर्य निषधाचल पर आरूढ होता है।'

इससे आगे आचार्य लिखते हैं—'उस कैलाशपर्वत स्थान से भगवान ने एक हजार राजाओ के साथ मोक्ष को प्राप्त किया ।

इसी प्रकार चक्रवर्ती भरत के मुक्तिगमन का वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं—

शैल वृषभसेनाद्यै· कैलासमधिरुह्य स· ।
शेषकर्मक्षयान्मोक्षमन्ते प्राप्त· सुरै· स्तुत· ॥'—

—हरिवंश पुराण १३।६

—मुनिराज भरत आयु के अन्त मे वृषभसेन आदि गणधरो के साथ कैलास पर्वत पर आरूढ हो गये और शेष कर्मों का क्षय करके वही से मोक्ष प्राप्त किया।

इसी सन्दर्भ मे राजा भगीरथ के सम्बन्ध मे आचार्य गुणभद्र ने जो वर्णन किया है, वह उल्लेख योग्य है—

निर्वाण गमन श्रुत्वा तेषा निर्विण्णमानस ।
वरदत्ताय दत्त्वात्मराज्यलक्ष्मीं भगीरथ ।
कैलासपर्वते दीक्षा शिवगुप्त महामुनेः ।
आदाय प्रतिमायोगधायभूत्स्वर्धुनी तटे ॥'—

—उत्तरपुराण ४८।१३८-१३९

—उन सबका मोक्षगमन सुनकर भगीरथ का मन निर्वेद से भर गया। अत उसने वरदत्त को अपनी राज्य लक्ष्मी सौंपकर कैलाश पर्वत पर शिवगुप्त नामक महामुनि से दीक्षा लेली तथा गगा नदी के तट पर प्रतिमा योग धारण कर लिया।

इसके आगे आचार्य रहस्योद्घाटन करते हुए कहते हैं—

'सुरेन्द्रेणास्य दुग्धाब्धिपयोभिरभिषेचनात् ।
क्रमयोस्तत्प्रवाहस्य गगाया सगमे सति ॥
तदा प्रभृति तीर्थत्वं गङ्गाप्यास्मिन्नुपागता ।
कृत्वोत्कृष्ट तपो गगातटेऽसौ निर्वृति गत ॥'—

—उत्तरपुराण ४८।१४०-१४१

इन्द्र ने क्षीरसागर के जल से महामुनि भगीरथ के चरणो का अभिषेक किया जिसका प्रवाह गगा मे जाकर मिल गया। उसी समय से गगा नदी भी इस लोक मे तीर्थ मानी जाने लगी। भगीरथ गगानदी के तट पर उत्कृष्ट तप कर वही से निर्वाण को प्राप्त हुए।

'तीर्थ' प्रसग में यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि इस पर्वत की ऊँची-ऊँची शृङ्खलाओ तक श्रमण जैन महामुनियो और तीर्थंकरो का विहार रहा। पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासज्ञ मेजर जनरल जे० सी० आर० फर्लाङ्ग के अनुसार तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मान्यता महात्मा बुद्ध से पूर्व, तिब्बत, चीन और मगोलिया मे विद्यमान थी। इससे यह अनुमान भी सहज हो जाता है कि वे अवश्य ही इस पर्वत स्थित प्रदेश तिब्बत मे विहार करते रहे हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि वे लोग तीर्थंकर पार्श्वनाथ को ही पूर्ण ज्ञानी होने के नाते बुद्ध कहते रहे हैं। वे कहते है—

ला० दीपचन्द ऋषिकेश चैत्यालय प्रांगण—



ऋषिकेश मे आहार को जाते हुए

[साथ मे नरेशचन्द बडौत व सौ० शान्ति देवी, दरियागज दिल्ली]

'यह स्पष्ट है कि प्राचीन तिब्बती, मंगोल और चीनी जनता का बुद्ध कोई जैन [तीर्थंकर] था। चीनी कहते हैं कि उनका अस्तित्व ईस्वी पूर्व दशवी तथा ग्यारहवी शताब्दी मे था। तिब्बती कहते हैं—उनका जन्म सन् ईस्वी से ६१६ वर्ष पूर्व हुआ और वे ईस्वी पूर्व ८८१ मे बुद्ध [पूर्णज्ञानी सर्वज्ञ] हुए। उन्होने ३५वें वर्ष से उपदेश दिया और ईस्वी पूर्व ८३१ मे निर्वाण प्राप्त किया। उक्त सब बातें तीर्थंकर पार्श्वनाथ से लगभग मेल खा जाती हैं[1]।'

इस विवरण के प्रकाश मे यह स्पष्ट हो जाता है कि गगा तटवर्ती यह हिमालय का प्रदेश सदा से श्रमण जैन मुनियो की तपोभूमि रहा। यहा तीर्थंकर वृषभदेव का समवसरण अनेक बार आया। और अनेक मुनियो ने इस प्रदेश मे तप करके मोक्ष प्राप्त किया। उनके तप पूत व्यक्तित्व की सुरभि यहा के कण-कण मे समाई हुई है। दूसरे शब्दो मे हम यूं कह सकते हैं कि—'हिमालय मे जितने ककर उतने शकर।' फलत यहाँ का कण-कण वन्दनीय है। क्योकि सन्त-सद्‌गुरु जहाँ भी चरण रखते हैं वही स्थल तीर्थ बन जाता है—

'ते गुरु चरण जहाँ धरें, जग मे तीरथ होय।'—

—कविवर भूधरदास

यहाँ उन जगद्‌गुरुओ ने अपने चरण रखे थे, इस प्रदेश मे उनका विहार हुआ था। यहाँ की धूलि के कण-कण मे तीर्थंकर वृषभदेव प्रभृति अनेक महामुनियो के चरणो की छाप लगी हुई है। भक्त को अब भी यहाँ सर्वत्र कण-कण मे तीर्थंकर वृषभदेव के दिव्य रूप के दर्शन, अपनी भावना मे होते हैं और वह सच्चे मायनो मे उन्ही को शकर [श—सुख, करोति—करः] सुखकर, शान्तिकर मानता है। भक्त के हृदय से एक ध्वनि प्रश्न बनकर फूट पडती है—कहाँ है मेरा वह शकर, जिसने ससार के दुखो से व्याकुल प्राणियो को शाश्वत-सुख की राह दिखाई। और जो उस राह पर चला, उसे अविनश्वर शान्ति प्राप्त हुई। इसीलिये तो कहा—

'त्व शकरोऽसि भुवनत्रय शकरत्वात्।'

—मानतुगाचार्य,

ऐसे ही उद्‌गार तार्किक शिरोमणि आचार्य अकलक के हृदय से भी निकले थे—

---

1 साइन्स आफ कम्परेटिव रिलीजन्स पृ० १६ [भाषान्तर]

'कृत्वा यः स तु सर्व वित्तनुभृतां क्षेमंकरः शकर' ।'—

—अकलंक स्तोत्र

—ससार के प्राणियो को अशान्ति और दुख प्राप्त हो रहे हैं। उसका कारण राग-द्वेप, विपय और कपाय हैं। जिसने इनको जीत लिया, वह 'जिन' वन जाता है। उसकी आत्मा मे सम्पूर्ण शान्ति और सुख का उदय हो जाता है और वही ससार के प्राणियो को सुख और शान्ति दे पाता है। इसलिये उसे 'शकर' भी कहा जाता है। आचार्य पूज्यपाद ने जैनेन्द्र व्याकरण [२।२।१६] मे इसी भाव को एक सूत्र द्वारा व्यक्त किया है—

—'शंकरी जिनविद्या।'

अर्थात् 'जिन' भगवान की विद्या [दिव्य-वाणी] शान्ति देने वाली है। हिमालय के हर ककर पर उस वाणी के अनुसरण करने वाले श्रमण मुनियो के चरण पडे है वहाँ के ककर-ककर के अवलोकन से श—शान्ति और सुख का अनुभव होता है अतः वहाँ का हर ककर शकर है। इसलिये यह कहना उचित ही है कि—

'हिमालय मे जितने ककर उतने शकर।'



परिशिष्ट

(यात्रा मे सघ व्यवस्थानुरूप जैन-श्रावक-श्राविकाएँ)

आद्यान्त—श्री दरी गौडा पाटील, सहारनपुर के—श्री जितेन्द्रकुमार, श्री मोतीलाल, श्री विनोद जैन व लेखक ।

कोटद्वार से—(चौके के साथ) सहारनपुर के—सौ० श्री उषा जैन, सौ० यशोदा जैन, कुमारी रेखा जैन, कुमारी उमा जैन एम० ए० और श्री राजकुमार जैनवाग । श्री सौ० सञ्जमाला और श्री धर्मराज शेट्टि (श्रीनगर तक जाते समय मे) ।

श्रीनगर से—श्री सागरचन्द जैन और परिवार (चौके के साथ—श्री रमेशचन्द, श्री मगतराम, श्री रामजीदास, सौ० उषा, सौ० विरमो देवी, कु० आशा व कु० मुन्नो, सभी जोशीमठ वापिसी तक) । श्री अनिल सहारनपुर, श्री राजीव जैन दिल्ली व श्री पप्पू जैन दिल्ली व ला० मगलसैन ठेकेदार सहारनपुर वाले (वद्रीनाथ तक) ।

वद्रीनाथ से—सौ० धर्मपत्नी श्री नेमचन्द जौहरी दिल्ली, चि० नवीन्द्र-कुमार व कु० सीमारानी और चि० अरविन्द के साथ । श्री कैलाशचन्द मन्त्री जैन समाज सहारनपुर (सपरिवार), श्री हेमचन्द जैन सहारनपुर ।

जोशीमठ से जोशीमठ—श्री विजेन्द्रकुमार सर्राफ व सौ० श्री सरोज जैन सहारनपुर ।

चमोली से वद्रीनाथ तक—श्री जैन प्रकाश जैन विकासनगर ।

यात्रा मध्य वद्रीनाथ पहुँचनें वाले कतिपय महानुभाव (जो ध्यान मे आ सके)—

फिरोजावाद से—सेठ श्री छदामीलाल जैन और साथी ।

दिल्ली के—श्री विशालचन्द चावडी वाजार सपरिवार, श्री नेमचन्द, श्री शीलचन्द जौहरी सपरिवार, श्री हेमचन्द जैन और श्री आसानन्द मुलतान वाले ।

मेरठ के—श्री राजेन्द्रकुमार, श्री मूलचन्द सपरिवार, श्री महेन्द्रकुमार सपरिवार और सरधना के श्री कैलाशचन्द सपरिवार।

जगाधरी के—श्री त्रिलोकचन्द (स्वस्तिका वाले) सपरिवार।

श्रीनगर के—श्री रमेशचन्द जैन नवभारत टाइम्स सपरिवार।

ऋषिकेश के—श्री दीपचन्द जैन।

सहारनपुर से—श्री पदमसैन प्रो० कश्मीर फोटो स्टूडियो।

सेवा-भक्ति में आत्महित

'नाकस्यपत्यु परिकर्मरम्यम् नागम्यरूपस्य तवोपकारी।
तस्यैव हेतु स्वसुखस्यभानो उद्बिभ्रतश्छत्रमिवादरेण ॥'—
तुंगात्फल यत्तदकिंचनाच्च प्राप्य समृद्धान्नधनेश्वरादेः।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे. नैकापि निर्यातिधुनी पयोधे ॥'—

—विषापहार स्तोत्र १७, १६

हे जिनेन्द्र, आप अगम्यरूप एव उपकारी है। यदि इन्द्र आपके शिर पर छत्र सुशोभित करता है तो वह आपका उपकार नही करता। अपितु आपके शिर पर आदरपूर्वक छत्र धारण करने से उसका सूरज की धूप से स्वय का बचाव हो जाता है। यद्यपि आप अकिंचन (दिगबर) हैं फिर भी भक्तो को आपसे अपार धन, ऐश्वर्य आदि वैसे ही प्राप्त हो जाते हैं जैसे जल रहित ऊँचे-ऊँचे पर्वतो से नदिया प्राप्त हो जाती हैं और जलराशि समुद्र से एक भी नदी नही प्राप्त होती—निकलती।'

× × ×

बिदाई गोष्ठी

जब सघ बद्रीनाथ से श्रीनगर वापिस पहुचा और साथी विदा होने लगे, सबने मिलकर एक गोष्ठी की। इसमे यात्रा मे घटित कार्य-कलापो का विवेचन किया गया। सभी ने एक दूसरे के कार्यों की सराहना की। परन्तु सभी का उत्तर ऊपर लिखे श्लोको का अनुसरण कर रहा था। वे कह रहे थे 'पूज्य मुनि श्री से हमारी रक्षा रही—यात्रा प्रबन्ध भी उन्ही के आशीर्वाद से हुआ—हमने कुछ भी नहीं किया।' वातावरण ऐसा था कि किसी ने 'मैं' का नाम तक नही लिया। साथ के एक साथी ने उल्लास मे गद्‌गद् होकर कहा—'आप लोगो को धन्य है, बहुत कुछ करने के बाद भी 'कुछ नही' कह रहे हैं।

× × ×



हिमालय-यात्रा मे अनवरत मुनिश्री की सेवा मे सावधान श्रावक-श्राविकाएँ

भव-भव मे सत्संग

जब साथी विदा हो रहे थे, सबके नयन भरे-भरे से थे। मानो, वे कह रहे हो—पूज्य गुरुवर के पुनीत दर्शन अब कब मिलेंगे ? ऐसे साथी कहाँ और कैसे मिलेंगे। ठीक ही हैं—थोडे दिनो का सत्सग सदा के लिये याद बन जाता है और दु सग पद-पद पर दुखदायी होता है। दु सग परित्याग मे जीवो को सुख और सत्सग-त्याग मे दुख होता है। सत्सग भव-भव मे मिले।

× × ×

जय अमर हो गई

बद्रीनाथ यात्रा मे जैन-ध्वज आद्यन्त लहराता रहा। यात्रा पूर्ण होने पर भी जब सहारनपुर के श्रावक विदा हुए, उनकी गाडी पर जैन-ध्वज लहरा रहा था और सब बोल रहे थे—जैन धर्म की जय, अहिंसा धर्म की जय, विश्व धर्म की जय, पूज्य मुनि श्री विद्यानन्द महाराज की जय। मानो, यात्रा के बाद युग-युगान्तरो को जय अमर हो गई।

सुभाषित

परमानन्दसयुक्त निर्विकार निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अनन्तसुखसम्पन्न ज्ञानामृतपयोधरम् ।
अनन्तवीर्यसम्पन्न दर्शन परमात्मनः ॥२॥

निर्विकार निराबाध सर्वसगविवर्जितम् ।
परमानन्दसयुक्तं शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥३॥

उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहचिंता च मध्यमा ।
अधमाकामचिंतास्यात् परचिंताधमाधमा ॥४॥

निर्विकल्प समुत्पन्न ज्ञानमेव सुधारसम् ।
विवेकमजलि कृत्वा त पिबन्ति तपस्विन ॥५॥

सदानन्दमय जीव यो जानाति स पण्डितः ।
स सेवते निजात्मान परमानन्दकारणम् ॥६॥

नलिनाच्चयथानीर भिन्न तिष्ठति सर्वदा ।
सोऽयमात्मा स्वभावेन देहे तिष्ठति निर्मल ॥७॥

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्त भावकर्मविवर्जितम् ।
नोकर्मरहितसिद्ध निश्चयेनचिदात्मकम् ॥८॥

आनन्द ब्रह्मणोरूप निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्तिजात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

सद्ध्यान क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षण दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अर्थ—परम आनन्द सयुक्त, विकार रहित तथा व्याधिवर्जित उस आत्मतत्त्व को, जो अपने देह मे व्यवस्थित है, ध्यान हीन व्यक्ति नही देख पाते। परमात्मा का वह साक्षात्कार (दर्शन) अन्तविहीन सुखो से सम्पन्न है, ज्ञानरूप अमृत का वृष्टिकर्ता मेघ है तथा अनन्तवीर्य सवलित है। उस शुद्ध चैतन्य का लक्षण विकार-विधुर, वाधावर्जित, सर्व सगविरहित तथा परम आनन्द विलक्षण है। अपने आत्मा का चिन्तन सर्वोत्तम है, मोह का चिन्तन मध्यम है, विषयादि का विचार करना अधम है और पर का चिन्तन सर्वाधम कोटि का चिन्तन है। विकल्पो के क्षय से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही अमृतरस है। तपस्वी महानुभाव अपने विवेक की अजली से उसका पान करते हैं ॥५॥

अर्थ—विद्वान वही है जो नित्य आनदमय जीव को जानता है। वही (ज्ञाता) परमानन्द-हेतुभूत निज आत्मा की उपासना करता है। स्वभाव से वह देहस्थित आत्मा निर्मल है और जिस प्रकार नीर मे कमल निर्लिप्त, अलग रहता है उसी प्रकार स्थित है। जव यह द्रव्यकर्म मलो से मुक्त हो जाता है तव निश्चय से सिद्ध, चिन्मात्र हो जाता है। इस ब्रह्म (आत्मा) का वास्तविक रूप आनन्द है। वह आनन्द स्वातम शरीर मे ही व्यवस्था प्राप्त है किन्तु ध्यान विरहित मनुष्य उसे वैसे ही नही देख पाते जैसे जन्मान्ध सूर्य को नही देख पाते। भव्यात्मा सद्ध्यान करते हैं जिससे मन का विलय हो जाता है, चित्त विक्षेप हट जाते हैं। उस व्यवस्था मे तत्क्षण ही उस शुद्ध आत्मब्रह्म की प्रतीति होती है जिसका लक्षण चैतन्य एव चमत्कार युक्त है ॥१०॥

ये ध्यानलीना मुनय प्रधानास्ते दु खहीना नियमाद्भवन्ति ।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्व व्रजन्ति मोक्ष क्षणमेकमेव ।।११।।
आनन्दरूप परमात्मतत्त्व समस्त सकल्पविकल्पमुक्त ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्य जानातियोगी
स्वयमेव तत्त्वम् ।।१२।।

निजानन्दमय शुद्ध निराकार निरामयम् ।
आनन्दसुखसम्पन्न सर्वसगविवर्जितम् ।।१३।।

लोकमात्रप्रमाणोऽय निश्चये न हि सशय ।
व्यवहारे तनूमात्र कथित परमेश्वरै ।।१४।।

यत्क्षण दृश्यते शुद्ध तत्क्षण गतविभ्रम ।
स्वस्थचित्त स्थिरीभूय निर्विकल्पसमाधित ।।१५।।

स एव परमब्रह्म स एव जिनपुगव ।
स एव परमं तत्त्व स एव परमोगुरु ।।१६।।

स एव परमज्योति स एव परमंतप ।
स एव परमध्यान स एव परमात्मक ।।१७।।

स एव सर्वकल्याण स एव सुखभाजन ।
स एव शुद्धचिद्रूप स एव परम शिव ।।१८।।

स एव परमानन्द स एव सुखदायक ।
स एव परमंज्ञान स एव गुणसागर ।।१९।।

परमाह्लादसम्पन्न रागद्वेषविवर्जितम् ।
सोऽह तं देहमध्येषु यो जानाति स पण्डित ।।२०।।

अर्थ—जो मुनि ध्यानमग्न हैं वे नियम से दुःखहीन होते हैं और शीघ्र ही परमात्मतत्त्व को प्राप्तकर क्षणमात्र काल मे मोक्षगामी होते हैं। परमात्मतत्त्व विशुद्ध आनन्दस्वरूप है। सपूर्ण सकल्पो और विकल्पो से मुक्त है। इस आत्मतत्त्व को (इसके रहस्य को) योग साधक स्वयमेव जानते हैं। यह आत्मानन्द स्वरूप है, शुद्ध है, आकार रहित है, रोगमुक्त है, अनन्तसुखराशि है और सर्वसग वर्जित है। निश्चयनय से इसका आयतन (विस्तार) लोक मात्र प्रमाण है इसमे सशय नही परन्तु व्यवहार की अपेक्षा से जिनेन्द्र भगवान ने इसे तनुमात्र प्रमाण कहा है। अपने चित्त की स्वस्थता से स्थिर होकर विकल्पतीत समाधि द्वारा जिस क्षण इस शुद्ध आत्मा का दर्शन प्राप्त कर लिया जाता है उसी क्षण समस्त विभ्रम विशीर्ण हो जाते हैं ॥१५॥

अर्थ—वह स्वात्मा ही शुद्धावस्थापन्न होने पर परमब्रह्म है, वही जिनश्रेष्ठ है, वही परमतत्त्व है, वही परमगुरुदेव है, वही परमज्योति, परमतप, परमध्यान और वही परमात्मा है। वही सर्वकल्याणात्मक है, वही सुखो का अमरपात्र है, वही विशुद्ध चैतन्यस्वरूप है, वही परम शिव है, वही परम आनन्द है, वही सुख प्रदाता है, वही परम ज्ञान है और गुणसमुद्र भी वही है। उस परम आह्लाद से सम्पन्न, रागद्वेषवर्जित आत्मा को, जिसके लिए 'सोऽह' का व्यवहार किया जाता है और जो देह मे स्थित है, जो जानता है वह पण्डित है ॥२०॥

आकाररहित शुद्ध स्वस्वरूपे व्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेत निर्विकारं निरजनम् ॥२१॥
तत्सदृश निजात्मान यो जानाति स पडित ।
सहजानन्द चैतन्य प्रकाशाय महीयसे ॥२२॥
पाषाणेषु यथा हेम दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथातैल देहमध्ये तथाशिव ॥२३॥
काष्ठमध्ये यथावह्नि शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु यो जानाति स पण्डित ॥२४॥

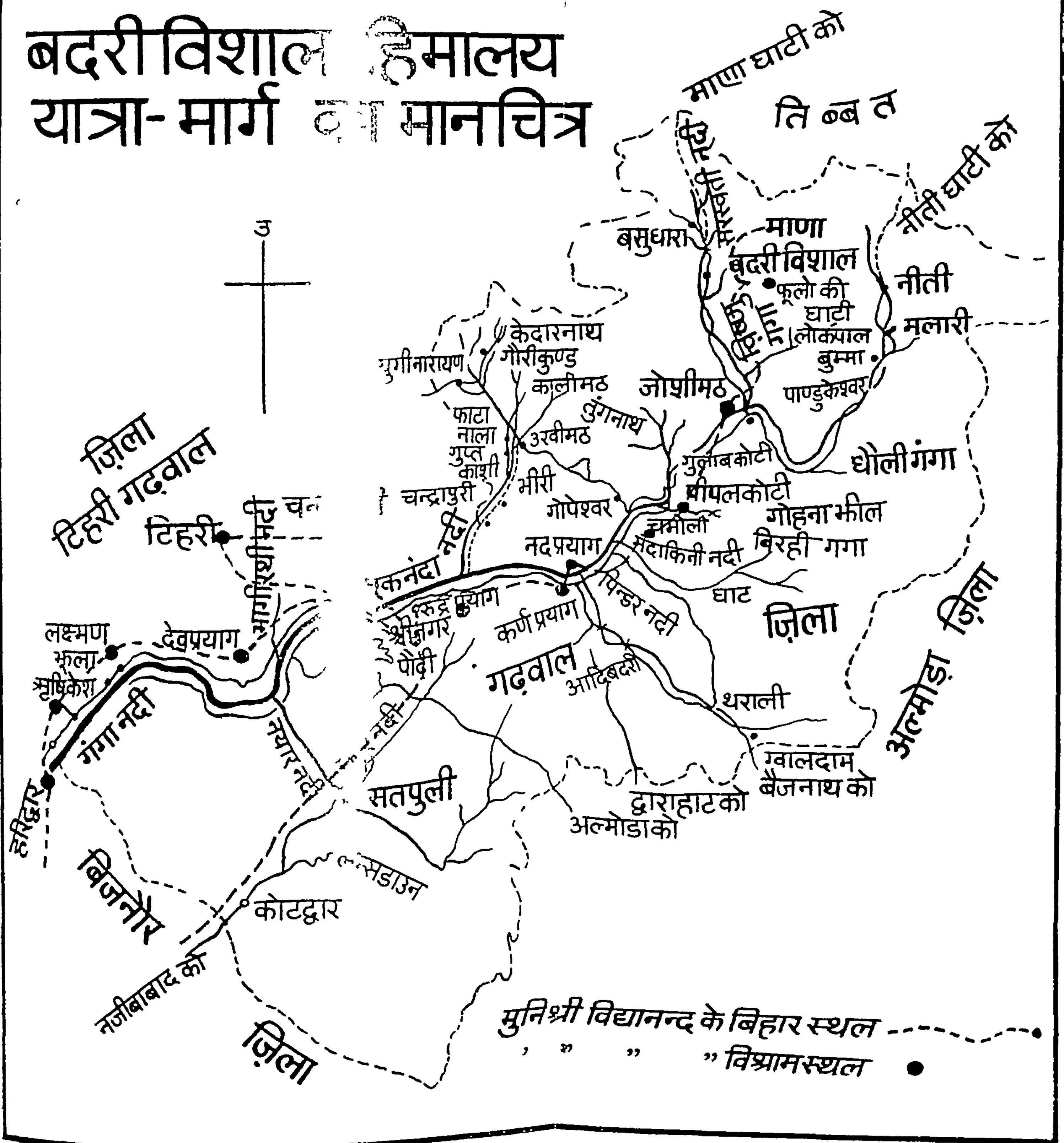
[उद्धृत]

अर्थ—यह आत्मा निराकार, शुद्ध, स्वस्वरूप मे स्थित, सिद्ध, अष्टगुणयुक्त, विकारनिरस्त और निरजन है। अपने आत्मा मे विद्यमान महान् सहजानन्द स्वरूप चैतन्य के प्रकाशनार्थ जो सिद्ध-आत्मा के सदृश अपने आत्मा को जानता है, वह पण्डित है। जैसे पाषाण मे सुवर्ण, दुग्ध मे घृत तथा तिलो मे तैल है वैसे इस देह मे शिव है, आत्मा विद्यमान है। और जैसे काष्ठ मे अग्नि है उसी प्रकार शक्तिरूप मे इन शरीरो मे आत्मा का निवास है इसे जानने वाला ही विद्वान है ॥२४॥

मुनि विद्यानन्द स्तुति

हे-मुनिवर, हे महर्षी, ज्ञानी
तव चरणो मे शत-शत वन्दन
युगवाणी अमृत बरसाए
दीपशिखा बन पथ दरसाए
दर्शन पावन मिले निरन्तर
धर्म लाभ पावे नित नूतन
तव चरणो मे शत-शत वन्दन ।।१।।
धीर, वीर, ओजस्वी, निर्मल
महामनस्वी, तपसी, अविकल,
सूर्य ज्योति सी गौरव गरिमा
हे विद्यानन्द 'सरस्वति' नन्दन
तव चरणो मे शत-शत वन्दन ।।२।।
भक्ति भाव से पद चिन्हो पर
जन मन गद्-गद् शीस झुकाए
सिद्धिमार्ग के साधक, हे मुनि
कोटि कण्ठ करते अभिनन्दन
तव चरणो में शत-शत वन्दन ।।३।।

[उद्धृत]



बदरी विशाल हिमालय
यात्रा-मार्ग का मानचित्र
माणा घाटी को
तिब्बत
नीती घाटी को
उ
बसुधारा
माणा
बदरी विशाल
फूलो की घाटी
नीती
मलारी
लोकपाल
बुम्मा
पाण्डुकेश्वर
जोशीमठ
केदारनाथ
गौरीकुण्ड
कालीमठ
तुंगनाथ
फाटा
नाला
गुप्त
काशी
उखीमठ
भीरी
चन्द्रापुरी
गोपेश्वर
गुलाबकोटी
पीपलकोटी
धौली गंगा
चमोली
गोहना झील
नदप्रयाग
मंदाकिनी नदी
बिरही गंगा
पिण्डर नदी
घाट
रुद्र प्रयाग
कर्ण प्रयाग
श्रीनगर
पौड़ी
गढ़वाल
आदिबद्री
थराली
ग्वालदाम
बैजनाथ को
द्वाराहाट को
अल्मोडा को
सतपुली
लैंसडाउन
कोटद्वार
नजीबाबाद को
ज़िला
टिहरी गढ़वाल
टिहरी
भागीरथी नदी
लक्ष्मण
झूला
देवप्रयाग
ऋषिकेश
गंगा नदी
हरिद्वार
बिजनौर
अल्मोड़ा ज़िला
मुनिश्री विद्यानन्द के बिहार स्थल
" " " " विश्रामस्थल